इस्लामी ज़िन्दगी

लेखक

नसरुल्लाह ख़ाँ अज़ीज़

अनुवाद

डा. कौसर यज़दानी नदवी

विषय-सूची

परिचय

"अमली मिसाल नसीहत से बेहतर है" यह एक मशहूर कहावत है, जो मानव-स्वभाव पर रौशनी डालती है। बहुत-सी बातें जो समझ में नहीं आतीं, अमली मिसाल से दिल में उतर जाती हैं और बहुत-से काम जिनके करने की हिम्मत इंसान अपने में नहीं पाता, दूसरों को करता हुआ देख-कर उन्हें कर डालता है।

मानव-स्वभाव का यही बुनियादी पहलू है जिसपर अल्लाह ने इंसान को पैदा किया है। इसी वजह से अल्लाह ने इंसान की हिदायत के लिए किताब से पहले नबी को पैदा किया और नबी ने ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाने से पहले ख़ुद उस पर अमल करके दिखा दिया। अल्लाह के सच्चे पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की सीरत का यही वह पहलू है जो इस्लामी दावत की चमत्कारिक कामयाबी की वजह बना।

हज़रत आइशा (रज़ि.) से किसी आदमी ने पूछा, "अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की ज़िन्दगी कैसी थी?"

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "तुमने क़ुरआन नहीं पढ़ा?"

अर्ज़ किया, "उम्मुल मोमिनीन! पढ़ा है।"

इर्शाद हुआ, "नबी(सल्ल.) की ज़िन्दगी वही थी, जो कुछ क़ुरआन में है।"

यानी अल्लाह के रसूल (सल्ल.) अल्लाह की किताब का अमली नमूना थे।

इस्लाम का पैग़ाम जिस दौर, जिस ज़माने और माहौल में पेश किया गया, उसमें उसपर अमल करना नामुमकिन था, लेकिन जब ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उसके एक-एक हर्फ़ पर अमल करके दिखा दिया तो

सहाबा (रज़ि.) जो हुज़ूर (सल्ल.) के ज़रिये उस पैग़ाम पर ईमान लाए थे, उसपर बड़ी आसानी से अमल करने लगे।

इस्लाम की तालीमात जैसे-जैसे नाज़िल होती गईं, अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और सहाबा किराम की ज़िन्दगियों में वह ढलती गईं। अक़ीदे, इबादतें, अख़लाक़, आदतें, हर मामले में पहले अल्लाह के रसूल (सल्ल.) आदर्श बने और फिर आपकी पैरवी में आपके साथी (रज़ि.) उस रास्ते पर चल पड़े, यहाँ तक कि हक़ की दावत की मुख़ालिफ़त की वजह से राहे-हक़ के मुसाफ़िरों पर जो मुसीबतें आईं, उनमें अल्लाह के रसूल (सल्ल.) बराबर के हिस्सेदार थे और अपने मक़सद में और साबित-क़दमी में सबसे आगे, और फिर इसी का नतीजा था कि 23 वर्ष की मुद्दत में एक पूर्ण आज़ाद हुकूमत क़ायम हो गई और उसको ऐसी जनता मिल गई, जिसका एक-एक व्यक्ति उस राज्य की शासन-व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति, और कल्चर का प्रतीक था। उस राज्य के रंग में जिस तरह उसकी जनता रच-बस गई थी उतनी रची-बसी जनता मानव-इतिहास में किसी राज्य की नहीं मिलती।

फिर हक़ की जो शमा इस तरह रौशन हुई थी, वह थोड़ी ही मुद्दत में बुझ नहीं गई, बल्कि आज तक उसकी किरणों से समाज रौशन है और आज के भौतिकवादी ज़माने में भी इस्लामी ज़िन्दगी के आदर्श मौजूद हैं, जो अपनी अमली मिसाल से बताते रहे हैं कि इस ज़िन्दगी के उसूल क्या हैं? उनपर अमल किस तरह किया जाता है, ताकि कोई आदमी यह न कह सके कि अब हालात बदल गए हैं, ज़माना बिगड़ गया है, माहौल ख़राब हो गया है, अब इस्लामी तालीमात के अनुसार जिन्दगी बसर करना मुमकिन नहीं रहा, बल्कि हर दौर में, हर इंसानी बस्ती में ऐसे लोग कम या ज़्यादा मौजूद रहे हैं जिन्होंने इस्लामी तालीमात के अनुसार ज़िन्दगी बसर करके साबित कर दिया है कि ये तालीमात न सिर्फ़ अमल करने के क़ाबिल हैं बल्कि यही पाकीज़ा, उच्च और सफल भी हैं।

क़ुरआन मजीद से बेहतर हिदायत की कोई किताब नहीं, लेकिन उसकी तालीमात पर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और सहाबा (रज़ि.) अमल करके न दिखाते तो यह हिदायत की किताब सिर्फ़ क़ानून की एक किताब होती और

अगर ताबईन, तबअ-ताबईन और बाद के बुज़ुर्ग और अच्छे लोग अल्लाह के रसूल और सहाबा (रज़ि.) के तरीक़े पर कारबन्द न होते, तो हमें इस बात का कभी यक़ीन न हो पाता कि इस्लामी तालीमात के अनुसार ज़िन्दगी हर ज़माने में बसर की जा सकती है। प्रकृति के इसी रहस्य पर से परदा उठाने के लिए ख़ालिक़े क़ायनात ने क़ुरआन मजीद में नबियों और नेक और भले लोगों के हालात व वाक़िआत जगह-जगह बयान किए हैं।

मैंने इस किताब को सिर्फ़ इसलिए तरतीब दिया कि इस्लामी तालीमात के अनुसार ज़िन्दगी जीने की चाह रखनेवाले इसमे पेश किए गए अमली नमूनों से ज़िन्दगी की अपनी मंज़िल तय करने के लिए हिम्मत और रहनुमाई हासिल करें और उनके इस अच्छे अमल से मुझे भी सवाब मिले और मेरे आमालनामे की स्याही भी इनके असर से ख़त्म हो जाए। आमीन!

6, नवम्बर 1955 ई. —नसरुल्लाह ख़ाँ अज़ीज

कुछ अल्फ़ाज़ का मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएंगे, जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोई परेशानी न हो। ऐसे अल्फ़ाज़ ये हैं :

अलै./अलैहि. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, '**अलैहिस्सलाम**', यानी 'उनपर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए ये अल्फ़ाज़ बढ़ा देते हैं।

रज़ि. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, '**रज़ियल्लाहु अन्हु**', इसके मायने हैं अल्लाह उनसे राज़ी हो!' '**सहाबी**' के नाम के साथ यह इज़्ज़त और मुहब्बत की दुआ बढ़ा देते हैं।

सहाबी : उस ख़ुशक़िस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल.) से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। **सहाबी** की जमा (बहुवचन) **सहाबा** है और मुअन्नस (स्त्रीलिंग) **सहाबिया** है।

रज़ि. : अगर सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं और अगर **सहाबा** के लिए इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** कहते हैं।

सल्ल. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, '**सल्लल-लाहु अलैहि व सल्लम**' इसका मतलब है, 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे!' हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए यह दुआ बढ़ा देते हैं।

अक़ीदे और इबादतें

ईमान की शर्त

हज़रत मुस्लिम बिन यसार हज़रत तलहा (रज़ि.) के ग़ुलाम थे और उन्हीं की संगति में रहकर इस्लाम और ईमान की हक़ीक़त को पहचान सके थे। वे फ़रमाया करते थे कि–

> ''अल्लाह पर ईमान के लिए यह ज़रूरी है कि आदमी उन तमाम बातों को छोड़ दे, जो अल्लाह को नापसन्द हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि बंदे का ईमान क़िस काम का है, अगर वह ख़ुदा की नापसन्दीदा बातों को नहीं छोड़ता।''

ख़ुदा का डर

हज़रत मैमून बिन मेहरान कूफ़ा में एक अज़्दी औरत के ग़ुलाम थे, फिर आज़ाद कर दिए गए। इल्म व अमल में इतने आगे बढ़े कि हुकूमत के बड़े-बड़े ओहदों पर बिठाए गए। वे एतिदाल से ज़्यादा नमाज़-रोज़े की इबादतों में मशग़ूल नहीं रहते थे, मगर ख़ुदा की नाफ़रमानी में पड़ जाना उन्हें बहुत ज़्यादा नागवार होता था। वे फ़रमाते थे–

> ''तौहीद पर ईमान उस वक़्त तक मुकम्मल नहीं हो सकता, जब तक कि शिर्क का इंकार न हो।''

उनकी नेकी और तक़वा (ख़ौफ़े ख़ुदा) की वजह से लोग उनकी बहुत इज़्ज़त किया करते थे। एक आदमी ने उनसे कहा–

> ''अबू अय्यूब! जब तक ख़ुदा आपको ज़िन्दा रखेगा, लोग भलाई पर क़ायम रहेंगे।''

हज़रत मैमून ने इस बात को सख़्त नापसन्द किया और फ़रमाया –

"इस क़िस्म की बात न कहो। बल्कि लोग उस वक़्त तक भलाई पर क़ायम रहेंगे, जब तक अपने रब से डरते रहेंगे।"

तौहीद और इख़लास

हज़रत उमर (रज़ि.) के सामने फ़ैसले के लिए जो मुक़द्दमे पेश थे, वे उनको निपटाकर उठे और दूसरे सरकारी कामों में लग गए। इतने में एक आदमी आया और कहने लगा–

"अमीरुल मोमिनीन ! फ़लाँ आदमी ने मुझपर ज़ुल्म किया है, मुझे इंसाफ़ दिलवाइए और मेरे मुक़द्दमे का फ़ैसला कीजिए।"

अमीरुल मोमिनीन उस वक़्त दूसरे सरकारी कामों में लगे हुए थे। उन्हें यह बे-वक़्त की बात बड़ी नागवार गुज़री और उन्होंने कोड़ा उठाकर उस आदमी के सिर पर दे मारा, और कहा–

"जब मैं मुक़द्दमों के फ़ैसले के लिए बैठता हूँ तो तुम लोग आते नहीं और जब मुसलमानों के दूसरे कामों में लग जाता हूँ तो दोहाई देते हुए आ जाते हो और काम का नुक़सान करते हो।"

वह बेचारा मायूस होकर जाने लगा। अभी वह कुछ क़दम ही गया था कि हज़रत उमर (रज़ि.) ने उसको बुलाया और कोड़ा उसके सामने डालकर कहा– "लो, बदला ले लो। जिस तरह मैंने तुम्हें कोड़ा मारा, तुम भी मार लो।"

"अमीरुल मोमिनीन ! मैं ख़ुदा के लिए और आप के लिए माफ़ करता हूँ।" उस आदमी ने कहा।

"नहीं, नहीं, इस तरह नहीं, या तो ख़ुदा के लिए माफ़ करो या मेरे लिए," फ़ारूक़े आज़म ने कहा।

"मैं सिर्फ़ ख़ुदा के लिए माफ़ करता हूँ," उस आदमी ने कहा।

अल्लाह की ख़ुशी के लिए

हज़रत रबीअ बिन ख़ैसम सरख़स के रहनेवाले थे। शुरू में ग़ुलाम थे। आज़ाद होकर बसरा में रहने-सहने लगे थे, फिर इल्म की तरफ़ तवज्जोह की और मुसलमानों के क़ायद और इमाम हो गए। हर काम अल्लाह की ख़ुशी के लिए करते थे।

एक बार उन्होंने अपने घरवालों से एक ख़ास खाने की फ़रमाइश की। चूँकि वे अपने लिए कभी किसी चीज़ की फ़रमाइश नहीं करते थे, इसलिए उनकी बीवी ने बड़े चाव से वह खाना तैयार किया। हज़रत रबीअ ने खाना लिया और पड़ोस में जो एक दीवाना रहता था, उसको अपने हाथ से खाना खिला आए। उसके मुँह से लार बह रही थी और वह उसको अपने हाथ से खाना खिला रहे थे।

वापस आए तो बीवी ने कहा, "तुमने खाना ले जाकर एक ऐसे आदमी को खिला दिया जो यह भी नहीं जानता कि उसने क्या खाया।"

आपने जवाब दिया, "ख़ुदा तो जानता है।"

मोमिन की सिफ़त

मोमिन हर काम अल्लाह की ख़ुशी के लिए करता है। जब वह कामयाबी हासिल करता है तो उसपर घमंड करने और उसे अपनी कोशिशों का नतीजा समझने के बजाय अल्लाह ही के दरबार में सज्दा-ए-शुक्र अदा करता है।

यर्मूक की लड़ाई इस्लामी जिहाद की तारीख़ में बड़ी नुमायाँ हैसियत रखती है। रूमी फ़ौजें बड़े जोश से मैदान में निकली थीं और 30 हज़ार योद्धाओं ने तो जीत या मौत की क़सम खा ली थी और पैरों में बेड़ियाँ पहन ली थीं ताकि भागने का ख़याल तक न आए।

हज़ारों पादरी और बिशप हाथों में सलीब लिए आगे-आगे थे और हज़रत मसीह का नाम लेकर जोश दिलाते थे। आख़िरकार बड़े ज़ोरों की

लड़ाई हुई, मगर रूमियों का वह साज़ व समान मुजाहिदों के ईमानी जोश के सामने बेकार साबित हुआ। उनका ख़ुदा पर भरोसा, सब्र और साबित-क़दमी रूमी मंसूबों को बहा ले गया और ईसाइयों के पाँव उखड़ गए। एक लाख के क़रीब रूमी मारे गए।

हज़रत उमर (रज़ि.) को इस जीत की ख़बर मिली तो सज्दे में गिरकर ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

जीत मिलने पर शुक्र अदा करने और उसपर ख़ुशी ज़ाहिर करने का यही इस्लामी तरीक़ा था। मुसलमान खेल-तमाशे, राग-रंग और नाच-गानों की महफिलें सजाकर ख़ुशी ज़ाहिर नहीं करते थे।

सही अक़ीदा

अक़ीदों का सही होना ईमान की बुनियाद है। हमारे बुज़ुर्ग इसका बहुत ख़याल रखते थे।

हज़रत इबराहीम तैमी से एक आदमी ने दरख़्वास्त की कि अबू इमरान! दुआ कीजिए, ख़ुदा मुझे भला-चंगा कर दे।

फ़रमाया, एक आदमी ने हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि.) से मग़फ़िरत की दुआ की दरख़्वास्त की थी। उन्होंने जवाब में कहा, "ख़ुदा तुम्हारी मग़फ़िरत न फ़रमाए।" यह सुनकर वह आदमी उनके पास से उठ खड़ा हुआ। हज़रत हुज़ैफ़ा ने फिर दुआ की, "ख़ुदा तुमको हुज़ैफ़ा का दर्जा अता करे।" फिर उस आदमी से पूछा, "अब तो तुम ख़ुश हो।" उसने कहा, "हाँ।" फ़रमाया, "कुछ लोग इस ख़याल से कुछ लोगों के पास जाते हैं, जैसे कि उसने तमाम दर्जे हासिल कर लिए हैं और वह कोई बुलंद और अल्लाह के दरबार की मक़बूल हस्ती बन गया है।"

मक़सद यह था कि बंदे को ख़ुदा से ख़ुद दुआ करने की आदत डालनी चाहिए। यह समझना कि दूसरा आदमी ख़ुदा के दरबार में ऐसे दर्जे को पहुँच गया है कि उसकी दुआ ज़रूर ही मान ली जाएगी, चाहे ख़ुदा को पसन्द हो या नापसन्द, तौहीद (एकेश्वरवाद) के अक़ीदे के ख़िलाफ़ है। अल्लाह तआला

बहरहाल बंदे पर सबसे ज़्यादा मेहरबान है और अगर वह बंदे की दुआ क़बूल करना चाहता है तो क़बूल कर लेगा, किसी और की सिफ़ारिश हो या न हो।

नीयत में इख़लास

कूफ़ा के एक रईस अबू अहमद टहलते हुए एक बाग़ में जा निकले। बाग़ की निगरानी करनेवाला ग़ुलाम रोटी खा रहा था। उसके सामने एक कुत्ता बैठा था। ग़ुलाम एक निवाला ख़ुद खाता और उतना ही बड़ा एक निवाला नाप कर कुत्ते को देता।

अबू अहमद ने कहा, "तुम्हें इस कुत्ते से बड़ी मुहब्बत है?"

"नहीं जनाब! यह एक अजनबी कुत्ता है। मुझे रोटी खाता हुआ देखकर भूख के मारे सामने बैठकर हाँपने लगा। मैंने सोचा, ख़ुदा की मख़लूक़ भूखी बैठी रहे और मैं पेट भर कर खाऊँ।" ग़ुलाम ने जवाब दिया।

"पर तुम निवाले नाप-नापकर क्यों दे रहे थे?" अबू अहमद ने हैरत से पूछा।

"मैंने दिल में नीयत की थी कि आधी ख़ुद खाऊँगा और आधी कुत्ते को दूँगा। इसलिए नापकर निवाला उठाता हूँ ताकि मेरी नीयत के ख़िलाफ़ न हो और मैं अल्लाह की पकड़ में न आऊँ।" नीयत में इख़लास के भेद को जाननेवाले सच्चे ग़ुलाम ने जवाब दिया।

ख़त्मे-नुबूवत

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) जब ख़लीफ़ा बना दिए गए तो उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि लोगों को जमा करके एक तक़रीर की और कहा–

> "मुझे मेरी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ ख़लीफ़ा बना दिया गया है, मैं अपनी बैअ़त की ज़ंजीर तुम्हारी गर्दनों से उतारता हूँ और तुमको हक़ देता हूँ कि जिसको चाहो, ख़लीफ़ा चुन लो।"

मगर पूरे मज्मे ने एक ज़बान होकर कहा–

"हमने आपको ख़लीफ़ा चुन लिया है। आप ख़ुदा का नाम लेकर ख़िलाफ़त का काम शुरू कर दीजिए।"

जब उनको सबने मिलकर ख़लीफ़ा चुन लिया तो फिर एक लम्बी तक़रीर की और उसमें अमीर की इताअत और लोगों की ज़िम्मेदारियों पर खुलकर बात की। आपने हम्द व नात के बाद फ़रमाया–

"अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के बाद कोई दूसरा नबी नहीं और उनपर जो किताब (यानी क़ुरआन मजीद) नाज़िल हुई, उसके बाद कोई दूसरी किताब नहीं। ख़ुदा ने जो चीज़ हलाल कर दी, वह क़ियामत तक के लिए हलाल है और जो हराम कर दी, वह क़ियामत तक हराम रहेगी। मैं अपनी तरफ़ से कोई फ़ैसला करनेवाला नहीं हूँ, बल्कि सिर्फ़ पैरवी करनेवाला हूँ। किसी को हक़ नहीं कि ख़ुदा की नाफ़रमानी में वह अपनी इताअत कराए। मैं तुम्हारी जमाअत का बेहतर आदमी भी नहीं, बल्कि मामूली आदमी हूँ, अलबत्ता ख़ुदा ने मुझको तुमसे ज़्यादा बोझिल कर दिया है।"

आख़िरत का डर

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने एक हरा-भरा पेड़ देखा और कहने लगे–

"काश! मैं पेड़ होता कि आख़िरत की ज़िम्मेदारी से छूट जाता।"

बाग़ में परिंदों को चहचहाते देखा तो, ठंडी साँस खींचकर फ़रमाया–

"परिंदो! तुम्हें मुबारक हो कि मज़े से चुगते-फिरते हो,
उड़ते-फुदकते हो, पेड़ों की डालियों पर बैठते हो और क़ियामत में तुम्हारा कोई हिसाब-किताब नहीं। काश! अबू बक्र तुम्हारी तरह होता।"

आख़िरत की पूछ-ताछ

हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी एक मशहूर ताबई और कूफ़ा के बड़े आलिम बाअमल थे। उनके बाप यज़ीद तैमी एक अमीर आदमी थे, मगर इसके बावजूद बड़े सादे कपड़ों में रहते थे। एक दिन इबराहीम ने उनसे कहा–

> "अब्बा जान! यह आपने रूई का मामूली-सा कपड़ा पहन रखा है। ख़ुदा ने आपको काफ़ी दौलत दी है, कोई ढंग का कपड़ा क्यों नहीं पहन लेते?"

बाप ने जवाब दिया–

> "बेटा! जब मैं बसरा आया तो हज़ारों पैदा किए, मगर मेरी ख़ुशी में कोई बढ़ोत्तरी न हुई। इसलिए कपड़े मेरे लिए ख़ुशी का कोई सामान नहीं। मैं तो आख़िरत के हिसाब-किताब से डरता हूँ, क्योंकि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के सहाबी हज़रत अबू दर्दा (रज़ि.) से सुना है कि क़ियामत के दिन एक दिरहम रखनेवाले से ज़्यादा दो दिरहम रखनेवाले से हिसाब होगा।"

आख़िरत के हिसाब-किताब का डर

आख़िरत के हिसाब-किताब का डर इस्लामी ज़िन्दगी की बुनियाद है। यही डर है, जिसकी वजह से एक आदमी अपनी ज़िन्दगी का किरदार ठीक रखता है और ज़िन्दगी के कर्तव्यों को ख़ुदा के हुक्मों के मुताबिक़ अदा करता है।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) को जब यह लगा कि अब उनका आख़िरी समय आ गया है तो अपने बाद होनेवाले ख़लीफ़ा यज़ीद बिन अब्दुल अज़ीज़ को एक वसीयतनामा लिखा, जिसमें तहरीर फ़रमाया–

"तुमको मालूम है कि ख़िलाफ़त के मामलों में मुझसे सवाल किया जाएगा और ख़ुदा मुझसे हिसाब लेगा और मैं अपना काम उससे छिपा न सकूँगा। अल्लाह तआला का इर्शाद है–

"फिर हम ख़ुद पूरे इल्म के साथ सारी सरगुज़िश्त बयान कर देगें आख़िर हम कहीं ग़ायब तो नहीं थे।" (क़ुरआन, 7:7)

अगर मेरा परवरदिगार मुझसे राज़ी हो गया तो मैं कामयाब हुआ और एक लम्बे अज़ाब से नजात पा गया। अगर वह मुझसे नाराज़ हुआ तो अफ़सोस है मेरे अंजाम पर, मैं उस ख़ुदा से, जिसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं, दुआ करता हूँ कि मुझे अपनी रहमत से नवाज़े और अज़ाब से नजात दे। और अपने फ़ज़्ल व करम से जन्नत अता करे। तुमको तक़्वा अपनाना चाहिए और लोगों का ख़याल रखना चाहिए।"

आख़िरत के हिसाब-किताब ही का डर था जिसकी वजह से उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) की ज़िन्दगी में तब्दीली आ गई और उन्होंने हुकूमत व सल्तनत में एक साफ़-सुथरी और पाकीज़ा तब्दीली पैदा की, यहाँ तक कि लोगों को हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि.) की ख़िलाफ़त का दौर याद आ गया।

नमाज़ पढ़ने में वक़्त की पाबंदी

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब (रज़ि.) जमाअत के साथ नमाज़ पर इतना ध्यान देते थे कि चालीस साल और एक रिवायत के मुताबिक़ पचास साल तक एक वक़्त की भी नमाज़ बाजमाअत न छूटी। हमेशा वक़्त पर मस्जिद पहुँचते और कभी ऐसा न हुआ कि लोग नमाज़ पूरी करके वापस जा रहे हों और वे मस्जिद में पहुँचे हों।

इबादत पर इस दर्जा ध्यान देने के बावजूद जब उनके ग़ुलाम बर्द ने कुछ आदमियों से इबादत में उनकी ख़ास तवज्जोह का ज़िक्र किया तो हज़रत सईद (रज़ि.) ने फ़रमाया–

"बर्द! ख़ुदा की क़सम! यह इबादत नहीं है। इबादते-इलाही कहते हैं ख़ुदा के अहकाम में ग़ौर करने और हराम बातों से बचने को।"

नमाज़ की अहमियत

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) के बाप अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) मिस्र के गवर्नर थे। उन्होंने अपने लड़के उमर को ऊँची तालीम दिलाने के लिए मदीना के हज़रत सालेह बिन केसान (रज़ि.) की निगरानी में दे दिया था। यह सालेह बिन केसान (रज़ि.) की तर्बियत का नतीजा था कि बनी उमैया के ख़ानदान में वह 'फ़ारूक़ द्वितीय' पैदा हुआ, जिसने ख़िलाफ़ते-राशिदा को नए सिरे से ज़िन्दा कर दिया।

सालेह बिन केसान (रज़ि.) ने किस तवज्जोह से उनकी तर्बियत की इसका अन्दाज़ा इस बात से हो सकता है कि एक बार उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने नमाज़ में देर कर दी।

"तुमने आज नमाज़ में देर क्यों कर दी?" ख़ुदापरस्त उस्ताद ने जवाब तलब करते हुए पूछा।

"बाल सँवार रहा था, इसलिए ज़रा देर हो गई", शागिर्द ने अदब से जवाब दिया।

"अच्छा, अब बालों को सँवारने में इतना चाव पैदा हो गया है कि उनको नमाज़ पर तर्जीह दी जाती है।" मेहरबान उस्ताद ने डाँटते हुए कहा।

इसके बाद उनके बाप को उस्ताद ने यह वाक़िया लिख भेजा।

अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) को जब यह मालूम हुआ तो उसी वक़्त एक आदमी को मिस्र से मदीना रवाना किया, जिसने आकर सबसे पहले उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) के सिर के बाल मूंडे, उसके बाद ही किसी से बात-चीत की क्योंकि उमर के बाप का यही हुक्म था।

इसी बेहतरीन तर्बियत का यह नतीजा था कि उमवी ख़ानदान के नाज़ों के पले एक शहज़ादे को 'हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़' बना दिया, जिनके बारे में इमाम अहमद बिन हंबल (रह.) की राय है कि वह पहली सदी के मुजद्दिद थे।

नमाज़ पर ध्यान

हज़रत अस्वद बिन यज़ीद (रज़ि.) एक मशहूर ताबई आलिम और बुज़ुर्ग थे। नमाज़ हमेशा शुरू वक़्त में अदा करते थे। नमाज़ पर इतना ध्यान देते थे कि चाहे किसी भी हाल और काम में हों, नमाज़ का वक़्त आते ही सब काम-काज छोड़कर नमाज़ के लिए खड़े हो जाते। उनके साथ सफ़र करनेवालों का बयान है कि सफ़र की हालत में कैसे ही ख़तरनाक रास्ते से गुज़र रहे हों, नमाज़ का वक़्त आने पर सवारी रोककर नमाज़ अदा करते।

अल्लाह की रिज़ा के लिए ग़ुलामों से प्यार

हज़रत नाफ़ेअ बिन काऊस एक अजमी ग़ुलाम थे और आख़िर में किसी तरह हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) के पास पहुँच गए थे। इब्ने उमर ने उनकी तालीम व तर्बियत पर बड़ा ध्यान दिया और नाफ़ेअ अपने दौर के हदीस के मशहूर इमामों में शामिल हो गए।

उनके कमालात की वजह से अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) उनसे बेहद मुहब्बत करते थे। ग़ुलामी के ज़माने में लोगों ने उनके बदले में काफ़ी मोटी रक़म की पेशकश की, मगर इब्ने उमर उनको अलग करने पर राज़ी न हुए। अब्दुल्लाह बिन जाफ़र ने 12 हज़ार की रक़म की पेशकश रखी। इब्ने आमिर ने कहा, मैं तीस हज़ार देता हूँ, लेकिन इब्ने उमर (रज़ि.) ने साफ़ इंकार कर दिया और उन्होंने जवाब दिया, मुझे डर है कि इब्ने आमिर के रुपये कहीं मुझे आज़माइश में न डाल दें और यह कहकर नाफ़ेअ को आज़ाद कर दिया और दुनिया की दौलत छोड़कर ख़ुदा की ख़ुशनूदी हासिल कर ली।

अख़लाक़ और लेन-देन

अल्लाह की ख़ुशी

अल्लाह का फरमाँबरदार बन्दा यानी मुसलमान जब कोई नेक काम करता है तो सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने के लिए करता है। आमिर बिन अब्दुल्लाह अंबरी (रज़ि.) जिहाद की एक मुहिम में शरीक हुए। अल्लाह तआला ने मुसलमानों को जीत दिलाई और लड़ाई में एक बड़े मशहूर दुश्मन की लड़की हाथ आई। लोगों ने उस लड़की की ख़ूबियाँ बयान कीं। आमिर (रज़ि.) ने तारीफ़ सुनकर कहा–

"मैं भी मर्द हूँ, यह लड़की मुझे दे दो।"

उनके तक़वा और दीनदारी को देखते हुए उनकी इस अप्रत्याशित (ग़ैर-मुतवक़्क़े) ख़वाहिश पर लोगों ने लड़की उनके हवाले कर दी। जब लड़की उनके क़ब्ज़े में आ गई तो उन्होंने लड़की से कहा–

"मैं तुम्हें ख़ुदा के लिए आज़ाद करता हूँ।"

लोगों को यह मालूम हुआ तो कहा, "यह आपने क्या ग़ज़ब किया! इतनी ख़ूबियोंवाली लड़की को आज़ाद कर दिया, इसके बदले में कोई दूसरी लौंडी आज़ाद कर देते।"

"मैं अपने रब की रिज़ा चाहता हूँ," आमिर बिन अब्दुल्लाह ने जवाब दिया।

अल्लाह की रिज़ा हासिल करने की तड़प मर्दों ही में नहीं थी, मुसलमान औरतें भी इस जज़्बे से सरशार थीं। क़बीला बनी रिबाह की एक औरत का एक ग़ुलाम था। उसका नाम रफ़ी था। इस्लाम में ग़ुलाम को आज़ाद करना बहुत बड़ी नेकी का काम है। इसीलिए अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने हम मुसलमानों को 'ग़ुलामों' को आज़ाद करने पर ख़ूब-ख़ूब उभारा है, ताकि

समाज से 'ग़ुलाम-प्रथा' को जड़ से ख़त्म किया जा सके यही वजह थी कि उस औरत ने रफ़ी को आज़ाद करने का इरादा किया।

उसके चचेरे भाइयों को मालूम हुआ तो इस इरादे से उसे बाज़ रखना चाहा और समझाया कि अगर उसे आज़ाद कर देगी तो वह कूफ़ा में जाकर लापता हो जाएगा।

"मैं उसे ख़ुदा की रिज़ा के लिए आज़ाद करना चाहती हूँ। मुझे इसकी परवाह नहीं कि वह कहाँ जाता है?" औरत ने जवाब दिया।

इसके बाद उस औरत ने जुमा के दिन रफ़ी को अपने साथ लिया और कहा, "मुझे जामा मस्जिद में ले चलो।"

मस्जिद में पहुँचकर वह मिंबर के क़रीब गई। इमाम के सामने अपने इरादे का इज़हार किया। इमाम ने उसकी बात सुनकर दोनों को मिंबर पर खड़ा कर दिया।

औरत ने रफ़ी का हाथ पकड़कर एलान किया, "ऐ ख़ुदा! मैं इसको आख़िरत के लिए तेरे पास जमा करती हूँ और तेरी रिज़ा के लिए इसे आज़ाद करती हूँ। मस्जिदवालो! गवाह रहना कि यह ग़ुलाम ख़ुदा के लिए आज़ाद है। आगे इस्लाम के हक़ के अलावा इसपर किसी का कोई हक़ नहीं।"

यह कहकर वह औरत मिंबर से उतरी और रफ़ी को छोड़कर चली गई।

यही रफ़ी आगे चलकर अबुल आलिया रिबाही के नाम से मशहूर हुए और अपने इल्म और फ़ज़्ल की वज़ह से सहाबा (रज़ि.) के नज़दीक भी इज़्ज़त के हक़दार क़रार पाए।

इब्ने अब्बास (रज़ि.) उनको क़ुरैश के बड़े लोगों से ऊँचा बिठाते थे।

अल्लाह पर भरोसा

(1)

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) के इन्तिक़ाल से पहले मुस्लिमा ने अर्ज़ किया–

"अमीरुल मोमिनीन! आपने अपनी औलाद को माल व दौलत से महरूम रखा और अब उनको इस हाल में छोड़ रहे हैं कि उनके पास कुछ नहीं। क्या अच्छा हो कि आप मुझे या किसी और व्यक्ति को वसीयत फ़रमा दें कि हम आपके बच्चों का ख़याल रखें।"

"मुझे टेक लगाकर बिठाओ।" उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) ने बड़ी कमज़ोर आवाज़ में फ़रमाया।

जब टेक लगाकर बिठा दिया गया तो फ़रमाया–

"मुस्लिमा! तुमने कहा कि मैंने अपनी औलाद को माल से महरूम रखा, ख़ुदा की क़सम! मैंने उनका कोई हक़ नहीं मारा, अलबत्ता जिस माल में उनका हक़ नहीं था, वह उनको नहीं दिया। फिर तुमने कहा कि मैं तुम्हें या ख़ानदान के किसी आदमी को वसीयत कर जाऊँ, तो सुनो! इस मामले में मेरा वसी व वली और कारसाज़ सिर्फ़ ख़ुदा है, जो नेक लोगों का वली होता है। मेरे लड़के अगर ख़ुदा से डरेंगे तो ख़ुदा उनके लिए रास्ता पैदा कर देगा, और अगर वे गुनाह में पड़ेंगे तो मैं उनको गुनाह करने के लिए मज़बूत न बनाऊँगा।"

(2)

बादशाह और हुकूमत के ज़िम्मेदार लोग अपनी हिफ़ाज़त के लिए सैकड़ों सिपाही पहरे पर तैनात रखते हैं। बनी उमैया के ख़लीफ़ाओं का भी यही तरीक़ा था। मगर हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो जहाँ शान व शौकत के दूसरे सामानों को ख़त्म किया, वहीं इस बेकार के ताम-झाम को भी हटा दिया और कहा–

"मेरी हिफ़ाज़त करनेवाला ख़ुदा काफ़ी है।"

एक बार कुछ हमदर्दों ने अर्ज़ किया–

"पिछले ख़लीफ़ाओं की तरह आप भी देख-भाल कर खाना

खाया करें और नमाज़ के वक़्त हमले से बचाव का इन्तिज़ाम किया करें।"

"जिन ख़लीफ़ाओं का तुम ज़िक्र कर रहे हो, अब वे कहाँ हैं?" उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने पूछा।

"वे सब मर चुके।" लोगों ने जवाब दिया।

"अगर वे हिफ़ाज़त के तमाम साज़ व सामान के बावजूद मौत से न बच सके तो इसका हासिल क्या?" हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने फ़रमाया।

इसके बाद आपने अपने ख़ुदा से मुख़ातब होकर अर्ज़ किया–

"ऐ ख़ुदा! अगर मैं तेरे इल्म में क़ियामत के दिन के अलावा और किसी दिन से डरूँ तो मेरे डर को इत्मीनान से न बदलना।"

(3)

हबशा की ओर हिजरत का ज़माना था। मज़्लूम मुसलमान मुशरिकों के ज़ुल्म से तंग आकर हबशा की ओर हिजरत कर रहे थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने भी हिजरत का इरादा कर लिया। उनकी तब्लीग़ से हज़रत तलहा बिन अब्दुल्लाह मुसलमान हो गए थे और इसकी वजह से तलहा के चचा नौफ़ल बिन ख़ुवैलद ने दोनों को एक साथ बाँधकर मारा था। चुनांचे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने भी हिजरत कर जाने की इजाज़त ली और हबशा चल पड़े। बरकुलग़माद नामी जगह पर पहुँचे तो रईसे-क़ारा इब्नुद्दुग़ना ने पूछा– "कहाँ का इरादा है?"

"मेरी क़ौम ने मुझको निकाल दिया। मज़बूर होकर किसी दूसरी जगह जा रहा हूँ, ताकि आज़ादी से अपने रब की इबादत कर सकूँ।" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने इब्नुद्दुग़ना को बताया।

"यह तो बड़े शर्म की बात है कि तुम जैसा आदमी निकाल दिया जाए। तुम ग़रीबों की मदद करते हो, मेहमानों की ख़ातिर करते हो, रिश्ते-नातों का

ख़याल रखते हो और मुसीबत के मारों की मदद करते हो।'' इब्नुद्दुग़्ना ने कहा।

''यह सही है लेकिन अपने वतन में रहते हुए अगर ख़ुदा की इबादत न कर सकूँ तो अपने वतन में रहने का क्या फ़ायदा?'' हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जवाब दिया।

''तुम मेरे साथ चलो, मैं तुमको अपनी अमान में लेता हूँ।'' इब्नुद्दुग़्ना ने बड़े हौसले से कहा।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) वापस आ गए।

इब्नुद्दुग़्ना ने क़ुरैश में हर जगह एलान कर दिया कि ''अबू बक्र (रज़ि.) मेरी अमान में हैं। तुम ऐसे भले आदमी को देश से निकल जाने पर मजबूर करते हो जो मुहताज़ों की ख़बरगीरी करता है; लोगों की मुसीबतों में काम आता है, मेहमानों की ख़िदमत करता है और रिश्तेदारों का ख़याल रखता है?''

क़ुरैश ने इस अमान को मान लिया, मगर उनका नुमाइन्दा इब्नुद्दुग़्ना के पास आया और कहने लगा–

> ''हम तुम्हारी अमान को मान लेते हैं। अबू बक्र (रज़ि.) को इजाज़त है कि वह जब और जिस तरह चाहें, इबादत करें, लेकिन यह काम वे अपने घर में करें।''

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अपने घर के सेहन में मस्जिद बनाई और उसी में इबादत करने लगे। क़ुरआन की तिलावत की आवाज़ घर से बाहर जाती और सुननेवाले उससे मुतास्सिर होते।

कुफ़्फ़ारे-क़ुरैश यह देखकर सख़्त घबराए और इब्नुद्दुग़्ना से आकर कहा–

> ''हमने इस शर्त पर अमान दी थी कि अबू बक्र (रज़ि.) छिपकर इबादत करें, लेकिन वे अपने सेहन में क़ुरआन पढ़ते हैं और हमारी

औरतें और बच्चे असर क़बूल कर रहे हैं। उनसे कह दो कि इससे बाज़ आ जाएँ।''

इब्नुद्दुग़्ना यह सुनकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के पास गया और उनसे कहा– ''तुम्हें मालूम है कि मैंने इस शर्त पर तुम्हारी हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया था कि तुम छिपकर अपने तरीक़े पर इबादत करोगे?''

''लेकिन तुम्हारी आवाज़ तो घर से बाहर जाती है। अब या तो उससे अपने को बचाओ या मुझे ज़िम्मेदारी से बरी समझो।'' इब्नुद्दग़्ना ने कहा।

''इब्नुद्दुग़्ना! मुझे तेरी पनाह की ज़रूरत नहीं। मेरे लिए अल्लाह की पनाह और अमान काफ़ी है।'' हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने बड़ी बेपरवाई से जवाब दिया।

तक़्वा (अल्लाह का डर)

(1)

इमाम हंबल (रह.) अभी बच्चे ही थे और लिखना-पढ़ना सीखा ही था कि मुहल्ले की औरतें उनसे अपने शौहरों को ख़त लिखवाती थीं। इन औरतों के शौहर फ़ौजी मुहिमों के सिलसिले में बग़दाद से बाहर गए हुए थे। उनकी बीवियाँ अपने ख़तों मे हर क़िस्म की बातें लिखवाना चाहती थीं, लेकिन अहमद बिन हंबल (रह.) में ख़ुदा का डर शुरू ही से इतना ज़्यादा था कि वह ख़तों में तक़्वा के ख़िलाफ़ कोई बात न लिखते।

(2)

ख़ुरासान के हाकिम यज़ीद बिन महलब को एक ऐसे आदमी की ज़रूरत थी जिसमें बहुत-सी ख़ूबियाँ हों। उसने लोगों से ऐसे आदमी के बारे में मालूमात की। लोगों ने अबू बर्दा (रह.) का नाम बता दिया, जो हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) के बेटे और बड़े साहिबे-कमाल बुज़ुर्ग थे। यज़ीद ने उनको बुलाया, बातें कीं और जब देखा कि जैसा सुना था वैसा ही पाया तो कहा–

“मैं आपको कुछ ओहदों पर मुक़र्रर करना चाहता हूँ।”

फिर उन ओहदों की तफ़सील बताई।

“मैं यह ख़िदमत करने से अपने आपको मजबूर पाता हूँ।” अबू बर्दा ने जवाब दिया।

“नहीं, आपको यह ख़िदमत क़बूल करनी होगी,” यज़ीद ने इसरार किया।

अबू बर्दा ने कहा–

“मेरे वालिद अबू मूसा अशअरी ने मुझसे बयान किया था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) फ़रमाते थे कि जिस आदमी ने कोई ओहदा क़बूल किया, जिसके बारे में वह ख़ुद जानता है कि वह उसके क़ाबिल नहीं तो उसको चाहिए कि दोज़ख़ को अपना ठिकाना बना ले।”

यह सुनकर यज़ीद उनके तक़्वे का क़ायल हो गया और उनकी मजबूरी को तसलीम कर लिया।

माफ़ कर देना

(1)

हज़रत रुबैअ बिन ख़ैसुम (रह.) जो बसरा के बहुत बड़े मुत्तक़ी ताबई और आलिम थे, एक बार मस्जिद गए। नमाज़ियों की भीड़ बहुत ज़्यादा थी।

जब जमाअत खड़ी होने लगी और लोग आगे बढ़े तो एक आदमी ने, जो उनसे पीछे था, उसने कहा, आगे बढ़ो। लेकिन बहुत ज़्यादा भीड़ होने की वजह से आगे बढ़ने की जगह न थी। वे आगे न बढ़ सके। उस आदमी ने ग़ुस्से में आकर उनकी गरदन में टहोका दिया।

उन्होंने गरदन मोड़कर सिर्फ़ इतना कहा– “ख़ुदा तुमपर रहम करे, ख़ुदा तुमपर रहम करे।”

उस आदमी ने आँख उठाकर देखा तो रुबैअ थे। वह मारे शर्मिंदगी के रोने लगा।

(2)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन औन कूफ़ा के बड़े आलिमों में जाने जाते थे। इस्लामी अख़लाक़ का पाकीज़ा नमूना थे। ज़बान पर उनको इतना क़ाबू था कि अपने लौंडी-ग़ुलाम, बल्कि बकरी और मुर्ग़ी तक को गाली नहीं देते थे। हर ईमानवाले की तरह जिहाद का शौक़ रखते थे।

एक बार एक ग़ुलाम को हुक्म दिया कि उस ऊँटनी पर पानी लादकर लाए। उस ज़ालिम ने उसे इतनी बेदर्दी से मारा कि उसकी एक आँख ख़राब हो गई। यह ऐसा हादसा था जिसपर लोगों को गुमान हुआ कि उनको ग़ुस्सा आएगा, लेकिन जब अब्दुल्लाह ने ऊँटनी को देखा तो ग़ुलाम से सिर्फ़ इतना कहा—

> "सुब्हानल्लाह ! ख़ुदा तुमको बरकत दे। मारने के लिए तुम्हें चहरे के अलावा और कोई जगह न मिली थी।"

इसके बाद उसको घर से निकालकर आज़ाद कर दिया।

नर्म-दिली

(1)

हज़रत अली बिन हुसैन बिन अली (रज़ि.) जो इमाम ज़ैनुल आबिदीन के नाम से जाने जाते हैं, एक दिन मस्जिद से निकले। रास्ते में एक आदमी मिला और बेतहाशा गालियाँ देने लगा। आपके नौकर-चाकर उसकी तरफ़ लपके कि इस बदतमीज़ी की सज़ा दें। आपने रोक दिया और उस आदमी को मुख़ातिब कर के कहा :

> "मेरे जो हालात तुमसे छिपे हुए हैं, वे इससे बहुत ज़्यादा हैं। अगर तुम्हारी कोई ज़रूरत ऐसी हो, जिसे मैं पूरी कर सकता हूँ तो बताओ।"

गालियाँ देनेवाला आदमी यह सुनकर बहुत ज़्यादा शर्मिंदा हुआ। इमाम ज़ैनुल आबिदीन ने अपना कुर्ता उतारकर उसे दे दिया और एक हज़ार दिरहम नक़द अता किए। इस 'बदले' का यह असर हुआ कि वह आदमी बे-पैसे का ग़ुलाम हो गया और पुकार उठा–

> "मैं गवाही देता हूँ कि आप अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की औलाद में से हैं।"

(2)

एक बार एक आदमी ने इमाम ज़ैनुल आबिदीन को ख़बर दी कि फ़लाँ आदमी आपको बुरा-भला कहता है। आप ख़बर देनेवाले को साथ लेकर उस आदमी के पास पहुँचे। ख़बर देनेवाला यह समझता था कि आपने उसको अपनी मदद के लिए साथ में लिया है, मगर वहाँ पहुँचकर आपने उस आदमी से फ़रमाया, तुमने मेरे बारे में जो कुछ कहा है, अगर सही है, तो ख़ुदा मेरी मग़्फ़िरत फ़रमाए और अगर झूठ है, तो ख़ुदा तुम्हारी मग़्फ़िरत फ़रमाए। यह कहकर वापस चले आए।

सब्र और बर्दाश्त

हज़रत उरवह बिन ज़ुबैर अब्दुल मलिक के पास शाम (सीरिया) गए हुए थे। एक दिन वह अपने लड़के को साथ लेकर शाही अस्तबल देखने गए। लड़का घोड़े पर सवार हो गया। घोड़े ने अजनबी सवार को पटक दिया और उसे इतनी चोट आई कि उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद ही उरवह के पाँव में एक बड़ा ज़हरीला फोड़ा निकल आया। हकीमों ने कहा :

"पाँव काट देना चाहिए वरना ज़हर सारे जिस्म में फैलकर हलाकत की वजह बनेगा।"

उरवह ने अपना पाँव कटवाने के लिए बढ़ा दिया।

हकीमों ने कहा, "थोड़ी-सी शराब पी लीजिए, ताकि बेहोशी की वजह से तकलीफ़ का एहसास कम हो।"

"जिस मर्ज़ में मुझे सेहत की उम्मीद भी हो, मैं उसमें भी हराम चीज़ से मदद नहीं लूँगा।" हज़रत उरवह ने जवाब दिया।

"तो फिर कोई बेहोश कर देनेवाली दवा ही इस्तेमाल कर लीजिए।" हकीम साहब ने मश्विरा दिया।

"साहब! मैं यह भी पसन्द नहीं करता कि मेरे जिस्म का एक हिस्सा काटा जाए और मैं उसकी तकलीफ़ महसूस न करूँ।"

जब पाँव काटने लगे तो कुछ आदमी संभालने के लिए आए। हज़रत उरवह ने पूछा– "तुम्हारा क्या काम है?"

"तकलीफ़ की तेज़ी में सब्र का दामन हाथ से छूट जाता है, इसलिए आपको संभालने आए हैं।" उन्होंने जवाब दिया।

हज़रत उरवह ने फ़रमाया, "इन्शा-अल्लाह, मुझे तुम्हारी मदद की ज़रूरत न होगी।"

हकीम ने औज़ारों से पाँव काट दिया। हज़रत उरवह बड़े सब्र के साथ बैठे रहे। उनकी ज़बान अल्लाह के ज़िक्र में लगी रही। जब ख़ून बन्द करने के लिए ज़ख़्म को दाग़ा गया तो दर्द की ज़्यादती से बेहोश हो गए। जब होश में आए तो कटा हुआ पाँव मंगाकर देखा और उलट-पलटकर उससे फ़रमाया–

> "उस ज़ात की क़सम! जिसने तुझसे मेरा बोझ उठवाया, उसको ख़ूब मालूम है कि मैं तेरे साथ किसी हराम रास्ते पर नहीं गया।"

हज़रत उरवह बेटे के इंतिक़ाल और पाँव कटने की मुसीबत पर भी सब्र व शुक्र के साथ कहते हैं :

> "अल्लाह तेरा शुक्र है कि मेरे चार हाथ-पाँवों में से तूने एक ही लिया और तीन बाक़ी रखे और चार बेटों में से एक ही लिया और तीन बाक़ी रखे। अगर तूने कुछ लिया है तो बहुत कुछ बाक़ी रखा है। अगर कुछ मुसीबत में डाला है तो बहुत दिनों आराम में भी रख चुका है।"

नफ़्स की इस्लाह

हज़रत उमर (रज़ि.) मिंबर पर चढ़े और सिर्फ़ इतना कहकर उतर आए—

"एक दिन वह था कि मैं अपनी ख़ाला की बकरियाँ चराया करता था और वह इसके बदले में मुट्ठी-भर खजूरें मुझे दे दिया करती थीं और आज मेरा यह ज़माना है।"

उनके दोस्तों को ताज्जुब हुआ कि अमीरुल मोमिनीन ने ऐसा क्यों कहा। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.) ने पूछ ही लिया—

"अमीरुल मोमिनीन! इस तरह तो आपने अपनी बुराई की और ख़ुद को लोगों की नज़रों में हक़ीर किया।"

अमीरुल मोमिनीन ने कहा :

"नहीं, बल्कि क़िस्सा यह है कि तनहाई में मेरे दिल ने कहा कि तुम अमीरुल मोमिनीन हो, तुमसे अफ़ज़ल कौन हो सकता है? मैंने चाहा कि इस हक़ीक़त को बता दूँ, ताकि उसको फिर इस क़िस्म का ख़याल भी न आए।"

नर्मी

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) की ख़िदमत में हज़रत रजाअ् बिन हय्यान नाम के एक मशहूर आलिम व फ़क़ीह व मुहद्दिस बुज़ुर्ग तशरीफ़ रखते थे। बातों में रात ज़्यादा हो गई और चिराग़ झिलमिलाने लगा। नौकर पास ही सो रहा था। रजाअ् ने कहा—

"नौकर को जगा दूँ कि उठकर चिराग़ में तेल डाल दे?"

"नहीं, उसे सोने दो, दिन भर का थका हुआ है।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया।

रजाअ् ख़ुद उठने लगे, अमीरुल मोमिनीन ने उनको भी रोक दिया और फ़रमाया, "आप मेहमान हैं, मेहमान से काम लेना मेहमान-नवाज़ी के

ख़िलाफ़ है।" फिर ख़ुद उठे, ज़ैतून का तेल लिया, चिराग़ में डाला और पलटकर फ़रमाया–

"जब मैं उठा, उस वक़्त भी उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ था और अब भी उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हूँ।"

शोहरत से परहेज़

हज़रत अय्यूब बिन अबी तमीमा सख़्तियानी एक मशहूर ताबई थे। अपने इल्म और अमल की वजह से ख़ूब जाने-पहचाने जाते थे, मगर उनको शोहरत से बड़ी नफ़रत थी। लोगों की नज़रों से बचने के लिए आम और चालू रास्तों को छोड़कर वीरान और दूर के रास्तों से निकलते, फिर भी जब किसी का सामना हो जाता, ख़ुद आगे बढ़कर सलाम करते, लोग उनके सलाम के जवाब में बहुत कुछ बढ़ा देते। इसपर अपने ख़ुदा को मुख़ातब करके क़हते –

"ऐ अल्लाह ! तुझको ख़ुद मालूम है कि मेरी यह ख़वाहिश नहीं है।"

और इसी जुम्ले को कई बार दोहराते।

मसावात (बराबरी)

(1)

हज़रत उमर (रज़ि.) के दो लड़के अब्दुल्लाह और उबैदुल्लाह एक मुहिम में इराक़ गए थे। मुहिम से फ़ारिग़ होकर बसरा आए, जहाँ हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) गवर्नर थे। उन्होंने अपने दोस्त के बेटों का स्वागत किया और ख़ूब ख़ातिरदारी की। जब मदीना रवाना होने लगे तो हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) ने कहा– "भतीजो ! मेरे पास सदक़े का कुछ माल है, जिसको अमीरुल मोमिनीन की ख़िदमत में भेजना है। यह माल आप ले लें और तिजारत का सामान ख़रीद लें और मदीना जाकर बेच दें और जो नफ़ा हासिल हो, अपने पास रख लें और असल माल अमीरुल मोमिनीन को दे दें।"

"ऐसा न हो, अमीरुल मोमिनीन ख़फ़ा हों।" दोनों ने जवाब दिया।

"मैं अमीरुल मोमिनीन को ख़बर किए देता हूँ।" बसरा के गवर्नर ने कहा।

मदीना आकर तिजारत का सामान बेचा गया और उससे बहुत नफ़ा हासिल हुआ। हिदायत के मुताबिक़ वह अस्ल माल लेकर अमीरुल मोमिनीन की ख़िदमत में पहुँचे और अर्ज़ किया–

"अब्बा जान! यह माल है और यह हमारा मुनाफ़ा।"

"लेकिन यह बताओ कि अबू मूसा ने कुल फ़ौज के साथ यही मामला किया है?" अमीरुल मोमिनीन ने पूछा।

"नहीं अब्बा जान!" बेटों ने अर्ज़ किया।

"तो इसका मतलब यह हुआ कि मेरे बेटे समझकर तुम्हारे साथ यह रिआयत की है।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया।

"जी हाँ!"

"तो असल रक़म और मुनाफ़ा दोनों बैतुलमाल में दाख़िल करो।" अमीरुल मोमिनीन ने हुक्म दिया।

(2)

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) गर्मियों की एक दोपहर में आराम कर रहे थे और एक लौंडी पंखा झल रही थी। पंखा झलते-झलते उसकी आँख लग गई तो पंखा लेकर लौंडी को झलने लगे। उसकी आँख खुली तो घबरा कर चिल्लाई– "अमीरुल मोमिनीन! यह आप क्या कर रहे हैं?"

"मेरी तरह तुम भी इंसान हो। तुम को भी गर्मी लगती है। जिस तरह तुम मुझे पंखा झल रही थीं, अगर मैंने भी झल दिया तो हरज की क्या बात है?" अमीरुल मोमिनीन ने लौंडी को तसल्ली देते हुए फ़रमाया।

(3)

बादशाहों और अमीरज़ादों का क़ायदा है कि जब वे कहीं ज़ाते हैं तो नक़ीब और बाडीगार्ड उनके आगे-आगे चलते हैं। बनी-उमैया के ख़लीफ़ाओं ने भी इसी तरह के ग़ैर-इस्लामी तरीक़े जारी कर रखे थे। फिर उन्होंने यह रस्म भी जारी कर दी थी कि नमाज़ के बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की तरह उनपर दुरूद व सलाम भेजा जाने लगा।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) की हुकूमत का दौर आया तो कोतवाल ने दस्तूर के मुताबिक़ नेज़ा लेकर आपके आगे-आगे चलना चाहा। आपने उसे रोक दिया और फ़रमाया, "मैं मुसलमानों का एक मामूली आदमी हूँ।"

सलाम के बारे में भी हिदायत कर दी कि आम सलाम किया जाए। हाकिमों को फ़रमान लिखा कि पेशेवर वाइज़ ख़लीफ़ाओं पर दुरूद व सलाम भेजते हैं, उनको इस काम से रोक दो और उनको हिदायत कर दो कि वे आम मुसलमानों के लिए दुआ करें, ख़ास तौर पर सिर्फ़ मेरे लिए दुआ न करें, बल्कि तमाम मुसलमानों के लिए दुआ करें। अगर मैं उनमें से होऊँगा तो मैं भी दुआ में शामिल हो जाऊँगा।

(4)

एक बार मुस्लिमा बिन अब्दुल मलिक एक मुक़द्दमे में फ़रीक़ की हैसियत से हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) के इज्लास में पेश हुआ और चूँकि शाही ख़ानदान से था, इसलिए दरबारी फ़र्श पर जा बैठा। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने फ़रमाया–

> "अपने फ़रीक़ मुक़द्दमा की मौजूदगी में तुम फर्श पर नहीं बैठ सकते या तो आम लोगों के बराबर बैठो या किसी दूसरे को अपना वकील मुक़र्रर कर दो।"

(5)

हज़रत अली बिन हुसैन बिन अली इमाम ज़ैनुल आबिदीन (रज़ि.) फ़ातिमी सैयद थे, मगर ख़ानदानी घमंड को मिटाने के लिए उन्होंने अपनी एक लड़की की शादी एक ग़ुलाम से कर दी थी और एक लौंडी को आज़ाद करके उसके साथ ख़ुद निकाह कर लिया था। ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक को मालूम हुआ तो उसने ख़त लिखकर इसकी निंदा की। इमाम ने इसके जवाब में लिखा :

> "अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का अमल हमारे लिए नमूना है। आपने हज़रत सफ़िया (रज़ि.) को, जो लौंडी थीं, आज़ाद करके उनसे निकाह कर लिया था और अपने ग़ुलाम ज़ैद बिन हारिस को आज़ाद करके अपनी फुफ़ेरी बहन ज़ैनब बिन्त जह्श को उनके निकाह में दे दिया था। हम और तुम अल्लाह के रसूल (सल्ल.) से ज़्यादा इज़्ज़तदार नहीं हैं।"

अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करना

सन् 09 हि. में क़ैसरे-रूम ने मुसलमानों पर अपना रौब व दबदबा क़ायम करने के लिए अफ़वाह उड़ा दी कि वह अरब पर हमला करनेवाला है। हालात सख़्त नाज़ुक थे, मौसम बड़ी गर्मी का था, फल पक चुके थे और मुसलमान जो बराबर होनेवाली लड़ाइयों की वजह से तंगी और परेशानी में पड़े हुए थे, अम्न चाहते थे। लेकिन जब ठीक इस्लाम के दिल पर हमले का अंदेशा पैदा होने लगा तो वे कमर कसकर खड़े हो गए और तीन हज़ार सरफ़रोश अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के झंडे तले जमा हो गए। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने हुक्म दिया कि अरब व रूम की सीमा पर जाकर दुश्मन का मुक़ाबला किया जाएगा।

इतनी बड़ी फ़ौज और इतने लम्बे सफ़र के लिए शानदार तैयारियों की ज़रूरत थी। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने सहाबा (रज़ि.) को अल्लाह की राह में अपना माल भी ख़र्च करने की हिदायत फ़रमाई क्योंकि जानें तो वे पहले ही हवाले कर चुके थे। इस मौक़े पर मुसलमानों ने बढ़-बढ़कर राहे ख़ुदा

में माल ख़र्च करने में हिस्सा लिया, लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने एक ऐसी मिसाल पेश की जिसकी नज़ीर इंसानी तारीख़ में नहीं मिलती।

वह अपने घर का सारा सामान लेकर नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में पहुँच गए। रहमते-आलम (सल्ल.) ने पूछा–

"अबू बक्र! अपने घरवालों के लिए क्या छोड़ा?"

"अल्लाह और उसके रसूल" ईसार व क़ुरबानी के पैकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जवाब दिया।

बुलन्द हौसला

इज़्ज़त व आबरू इंसान को अपनी जान से भी ज़्यादा प्यारी होती है, मगर इस्लाम में अल्लाह की ख़ुशी के सामने दुनिया की किसी प्यारी चीज़ की भी कोई हैसियत नहीं। सन् 06 हि. में जब इफ़्क की घटना घटी तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के एक रिश्तेदार मिस्तह बिन असासा भी मुनाफ़िक़ों की शरारत का शिकार हो गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मिस्तह की परवरिश करते थे। जब अल्लाह की ओर से हज़रत आइशा (रज़ि.) के निर्दोष होने की आयत नाज़िल हुई तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मिस्तह की परवरिश से अलग हो गए और फ़रमाया– "मैं उसकी इस शरारत और तोहमत के बाद उसकी परवरिश नहीं कर सकता?"

लेकिन उसके बाद ही तुरन्त ये आयतें नाज़िल हुईं–

> "तुममें जो लोग बुज़ुर्गी और हैसियत रखते हैं, वे अपने रिश्तेदारों, मिस्कीनों और अल्लाह की राह में घर छोड़नेवालों को मदद न करने की क़सम न खाँए। उन्हें चाहिए कि माफ़ कर दें और दरगुज़र करें। क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह भी तुम्हें बख़्श दे? और अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है।"
>
> (क़ुरआन, 24:22)

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने यह अल्लाह का फ़रमान सुना तो तुरन्त मिस्तह की सारी ग़लती माफ़ कर दी और कहा, "ख़ुदा की क़सम! मैं

चाहता हूँ कि ख़ुदा मुझे बख़्श दे।''

और मिस्तह का वज़ीफ़ा फिर जारी कर दिया।

नेकी हासिल करने का ज़रिया बनाना

मुसलमान मक्का मुअज़्ज़मा से हिजरत करके यसरिब की अजनबी बस्तियों में आकर आबाद हो गए थे, जो अब 'मदीनतुर्रसूल' (रसूल का शहर) के नाम से मशहूर होकर मुसलमानों की पनाहगाह बन गई थी। आबादी के बढ़ जाने की वजह से पानी की सख़्त तकलीफ़ हो गई थी, क्योंकि शहर भर में सिर्फ़ एक ही कुआँ 'बेरे-रोमा' था, जिसका पानी पीने के लायक़ था और उसका मालिक एक यहूदी था जो उसका पानी बेचा करता था।

नबी (सल्ल.) ने सहाबा (रज़ि.) से कहा, ''पानी की तकलीफ़ दूर करने के लिए कौन बेरे-रोमा को ख़रीदकर वक़्फ़ करता है?'' ''ऐ अल्लाह के रसूल! मैं इस ख़िदमत के लिए हाज़िर हूँ।'' हज़रत उसमान (रज़ि.) ने अर्ज़ किया।

बेरे-रोमा के मालिक यहूदी से हज़रत उस्मान (रज़ि.) ने ख़रीद व फ़रोख़्त की बातें कीं तो उस कंजूस ने कहा, ''मैं सिर्फ़ आधा कुआँ बेच सकता हूँ। एक दिन तुम्हारी बारी होगी, दूसरे दिन कुआँ मेरे लिए ख़ास रहेगा और इसके लिए मैं 12 हज़ार दिरहम क़ीमत के तौर पर लूँगा।''

हज़रत उसमान (रज़ि.) ने मजबूरन यह शर्त मंज़ूर कर ली और इस परेशानी का यह हल निकाला गया कि मुसलमान हज़रत उसमान (रज़ि.) की बारी के दिन इतना पानी भरकर रख लेते थे कि दो दिन के लिए काफ़ी होता था। ज़ब यहूदी ने देखा कि उसने नफ़ा हासिल करने का जो तरीक़ा निकाला था, वह नाकाम हो गया तो उसने हज़रत उसमान (रज़ि.) से कहा–

''कुएँ का बाक़ी आधा हिस्सा भी ख़रीद लीजिए।''

आठ हज़ार दिरहम में यह आधा हिस्सा भी उन्होंने ख़रीद लिया और ख़ुदा के बन्दों के लिए पानी का इन्तिज़ाम करके अपने लिए हौज़े-कौसर से सैराब होने का इन्तिज़ाम कर लिया।

सख़ावत

(1)

हज़रत सफ़वान बिन सलीम ज़ोहरी एक रात मस्जिद से निकले। मौसम सख़्त सर्दी का था। मस्जिद के बाहर एक आदमी को देखा कि नंगे बदन सर्दी में ठिठुर रहा है। उन्होंने उसी वक़्त अपने जिस्म के कपड़े उतारकर उस नंगे जिस्म इंसान को पहना दिए।

(2)

हज़रत उरवह बिन ज़ुबैर के खजूरों के बहुत-से बाग़ थे। जब खजूरों की फ़सल आती और वह पककर तैयार हो जाती तो बाग़ की दीवार तोड़वा देते और आम एलान हो जाता कि लोग आएँ और बाँध-बाँधकर साथ ले जाएँ।

(3)

हज़रत इमाम ज़ैनुल आबिदीन का इन्तिक़ाल हुआ और उनको नहलाया जाने लगा तो उनके जिस्म पर नीले दाग़ नज़र आए। पता लगाया तो मालूम हुआ कि अपनी बुज़ुर्गी के बावजूद आप रातों को अपनी पीठ पर आटे की बोरियाँ लादकर ग़रीबों के घर ले जाया करते थे, और ये उसी के दाग़ हैं।

जब कोई माँगनेवाला आता तो इमाम साहब फ़रमाते–

"मेरे तोशे (नेक आमाल) को आख़िरत की तरफ़ ले जानेवाले तेरा इस्तिक़बाल है।"

और ख़ुद उठकर माँगनेवाले को देते। फ़रमाया करते थे–

"सदक़े, माँगनेवाले के हाथ में जाने से पहले ख़ुदा के हाथ में जाते हैं।"

अपनी ज़िन्दगी में दो बार अपनी कुल पूँजी का आधा ख़ुदा की राह में दे दिया था।

कुरबानी

(1)

बाग़ियों ने हज़रत उसमान (रज़ि.) के घर को घेर रखा था और उनसे माँग कर रहे थे कि वे ख़िलाफ़त का पद छोड़ दें, लेकिन हज़रत उसमान (रज़ि.) उस वसीयत की वजह से, जो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने की थी, उनकी माँग नहीं मानते थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उनसे फ़रमाया था–

"अल्लाह तुम्हें एक कमीज़ पहनाएगा। अगर लोग तुमसे कहें कि इस क़मीज़ को उतार डालो तो उनकी इस ख़वाहिश पर क़मीज़ न उतार डालना।"

हज़रत उसमान (रज़ि.) जानते थे कि यह ख़िलाफ़त ही क़मीज़ है।

आख़िरकार बाग़ियों ने आपस में मश्विरा किया कि हज़रत उसमान (रज़ि.) को क़त्ल कर दिया जाए।

हज़रत उसमान (रज़ि.) अपने मकान में घेर लिए गए थे। उन्होंने अपने कानों से इस मश्विरे को सुना और फ़सादियों के मज्मे के सामने आकर फ़रमाया–

"लोगो ! आख़िर तुम मेरे ख़ून के प्यासे क्यों हुए हो? इस्लाम के क़ानून में सिर्फ़ तीन शक़्लें हैं जिनमें किसी मुसलमान का क़त्ल जाइज़ है–

1. उसने बदकारी की हो तो उसे संगसार किया जाएगा,

2. उसने किसी व्यक्ति को इरादे से क़त्ल किया हो तो वह क़िसास में मारा जाएगा, और

3. वह मुर्तद हो गया हो तो उसे क़त्ल कर दिया जाएगा।

मैंने न जाहिलियत में बदकारी की और न इस्लाम में की, न मैंने किसी को क़त्ल किया और न इस्लाम लाने के बाद मुर्तद हो गया। मैं अब भी गवाही देता हूँ कि ख़ुदा एक है, मुहम्मद (सल्ल.) उसके बन्दे और रसूल हैं।"

बाग़ियों ने इन दलीलों को माना, मगर अपने इरादे से बाज़ न आए।

इसी बीच मुग़ीरा बिन शोबा आए और कहा– "अमीरुल मोमिनीन! तीन बातों में से किसी एक बात को क़बूल कर लीजिए, ताकि फ़ित्ना ख़त्म हो।"

"कहिए", हज़रत उसमान (रज़ि.) ने फ़रमाया।

अमीरुल मोमिनीन! आपके जाँनिसारों और साथियों की एक बड़ी तादाद यहाँ मौजूद है, उसको लेकर निकलिये और बाग़ियों का मुक़ाबला करके उनको भगा दीजिए।– "आप हक़ पर हैं और बाग़ी बातिल पर। मदीनावाले हक़ का साथ देंगे।" मुग़ीरा ने कहा।

"तुम ठीक कहते हो मगर, मैं बाहर निकलकर और जंग लड़कर वह पहला ख़लीफ़ा नहीं बनना चाहता जो उम्मते मुहम्मदी की ख़ूँरेज़ी करे।" हज़रत उसमान (रज़ि.) ने बेनियाज़ी, मगर मज़बूत इरादे के साथ फ़रमाया।

मुग़ीरा ने दूसरी तजवीज़ पेश करते हुए कहा : "अगर आप युद्ध के लिए तैयार नहीं तो दूसरी ओर से दीवार तोड़कर बाहर निकल जाइए और सवारियों पर बैठकर मक्का मुअज़्ज़मा तशरीफ़ ले जाइए। हरम में ये लोग नहीं लड़ पाएँगे।" मुग़ीरा ने अर्ज़ किया।

"मुझे यह बात भी मंज़ूर नहीं। अगर मैं मक्का मुअज़्ज़मा भी चला गया तो मुझे उम्मीद नहीं कि ये लोग हरमे-इलाही की तौहीन से बाज़ आ जाएँगे और लड़ेंगे नहीं। जो मेरी जान के दुश्मन हैं, उनसे हरम के एहतिराम की क्या उम्मीद की जाए। मेरे आक़ा मुहम्मद (सल्ल.) ने ख़बर दी है कि मुसलमानों का एक ख़लीफ़ा होगा, जो मक्का जाकर हरम की बेहुर्मती की वजह बनेगा। मुग़ीरा मैं इस भविष्यवाणी को अपने ऊपर सच नहीं होने दे सकता।" हज़रत उस्मान (रज़ि.) ने फ़रमाया।

"तो अमीरुल मोमिनीन! फिर तीसरी शक्ल यह है कि यहाँ से निकल कर शाम चले जाइए। वहाँ मुआविया मौजूद हैं। उधर का रुख़ करने की हिम्मत भी बाग़ियों को नहीं होगी।" मुग़ीरा ने बेबसी के साथ अर्ज़ किया।

"लेकिन मुग़ीरा! मुझे यह शक्ल भी मंज़ूर नहीं। मैं अपने हिजरत के घर और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के पड़ोस को नहीं छोड़ सकता।" हज़रत उसमान (रज़ि.) ने फ़रमाया।

मुग़ीरा निराश और लाजवाब होकर चले गए।

(2)

हज़रत उसमान (रज़ि.) को बाग़ियों के हमले से बचाने के लिए हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) की क़ियादत में सात सौ सरफ़रोश और जाँनिसार अमीरुल मोमिनीन के लम्बे-चौड़े मकान में मौजूद थे।

अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) बहादुरी में अपना जवाब नहीं रखते थे। वे हज़रत उसमान (रज़ि.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अर्ज़ किया– "अमीरुल मोमिनीन! इस वक़्त घर के अन्दर हमारी बड़ी तादाद मौजूद है। आपका इशारा हो तो हम इन बाग़ियों को तलवार की नोक पर रख लें।"

"अब्दुल्लाह! अगर तुममें से किसी एक का भी इरादा यह हो तो उसको मैं ख़ुदा का वास्ता देकर कहता हूँ कि वह मेरे लिए अपना ख़ून न बहाए।" अमीरुल मोमिनीन ने हुक्म दिया।

अब्दुल्लाह (रज़ि.) मायूस होकर चले गए तो हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.) आए और कहा–

"अमीरुल मोमिनीन! अंसार दरवाज़े पर खड़े इजाज़त चाहते हैं कि जिस तरह उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के झंडे तले तलवार के जौहर दिखाए थे, अमीरुल मोमिनीन की तरफ़ से मदद का हक़ अदा करें।"

"ज़ैद! अगर लड़ाई मक़्सूद है तो मैं इसकी इजाज़त नहीं दूँगा। इस वक़्त मेरी मदद का सबसे बड़ा हक़ यह है कि मेरी हिमायत में कोई आदमी तलवार न उठाए।" हज़रत उसमान (रज़ि.) ने जवाब दिया।

फिर हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) आए और जंग की इजाज़त माँगी।

हज़रत उसमान (रज़ि.) ने फ़रमाया– "अबू हुरैरा! क्या तुम इसको

पसन्द करोगे कि सारी दुनिया को और साथ ही मुझको भी क़त्ल कर दो?''

''हरगिज़ नहीं अमीरुल मोमिनीन।'' अबू हुरैरा (रज़ि.) ने कहा।

''तो सुनो! अल्लाह का फ़रमान है कि जिसने एक आदमी को क़त्ल किया, उसने मानो सब इंसानों को क़त्ल कर दिया। अगर तुमने एक को भी क़त्ल किया, तो मानो सब क़त्ल हो गए। इसलिए मेरी फ़िक्र न करो। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) मुझे दो बार ख़बर दे चुके हैं। मेरी शहादत मुक़द्दर हो चुकी है और इर्शाद के मुताबिक़ सब्र करूँगा।''

जुमा के दिन सुबह को उठे तो अपनी बीवी से फ़रमाया– ''मेरी शहादत का वक़्त आ गया। आज बाग़ी मुझे क़त्ल करेंगे।''

''नहीं, नहीं, अमीरुल मोमिनीन! ऐसा कभी नहीं हो सकता।'' बीवी ने दुख भरे स्वर में कहा।

''बीवी! आज मैं ख़ाब देख चुका हूँ कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और अबू बक्र व उमर (रज़ि.) तशरीफ़ लाए हैं और फ़रमा रहे हैं, उसमान! जल्दी करो। इफ़्तार के लिए हम तुम्हारे इन्तिज़ार में हैं। साथ ही अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया कि उसमान! आज जुमा मेरे साथ पढ़ना, इसलिए बस आज रवानगी है।'' हज़रत उसमान (रज़ि.) ने पूरे सुकून के साथ जवाब दिया।

इसके बाद अपना नया कपड़ा मंगाकर पहना। अपने बीस ग़ुलामों को आज़ाद कर दिया और क़ुरआन मजीद खोलकर तिलावत में लग गए।

बाग़ियों ने मकान पर हल्ला बोल दिया। चार बाग़ी दीवार फाँदकर छत पर चढ़ गए जहाँ हज़रत उसमान तिलावत फ़रमा रहे थे और उनको शहीद कर दिया। मज़्लूम ख़लीफ़ा ने अपने बचाव में हाथ तक न उठाया। ज़ख़्म खाकर गिरे तो ज़बान से सिर्फ़ ये शब्द निकले–

''बिस्मिल्लाहि तवक्कल्तु अलल्लाहि।''

अल्लाह के नाम से मैंने अल्लाह पर भरोसा किया है।

यह पहला ख़ून था जो मुसलमानों की तारीख़ में मुसलमानों ने मुसलमान का बहाया और फिर ख़ूँरेज़ी का सिलसिला जो चला तो आज तक बंद नहीं हुआ, जबकि हज़रत उसमान (रज़ि.) ने तो ख़ानाज़ंगी को रोकने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी थी।

त्याग और बलिदान

हज्जाज सक़फ़ी हज़रत इबराहीम नख़ई ताबई का सख़्त दुश्मन था और उनको तकलीफ़ पहुँचाने की ताक में रहता था, मगर वे हाथ नहीं आते थे। आख़िरकार उसने अपने आदमी मुक़र्रर किए कि उनको गिरफ़्तार कर लाएँ।

हज़रत इबराहीम बिन यज़ीद तैमी को मालूम हुआ तो उन्होंने इबराहीम नख़ई के बजाए ख़ुद को पेश कर दिया और कहा कि मैं हूँ इबराहीम।

सरकारी आदमी इबराहीम नख़ई को नहीं पहचानते थे और इबराहीम तैमी को पकड़ कर ले गए।

हज्जाज ने हुक्म दिया कि उनको ज़ंजीरों में जकड़कर दीमास के क़ैदख़ाने में डाल दिया जाए। यह क़ैदख़ाना एक अज़ाबख़ाना था। इसमें सर्दी, गर्मी, धूप और पानी से बचने का कोई इंतिज़ाम न था, जो क़ैदी उसमें दाख़िल हुआ, मरकर ही निकला।

इस तकलीफ़देह क़ैद ने कुछ ही दिनों में उनका रंग-रूप ऐसा बदल दिया कि उनकी माँ भी उनको न पहचान सकी, लेकिन इबराहीम तैमी सब्र व मज़बूती के साथ तमाम मुसीबतों का मुक़ाबला करते रहे और हज्जाज को यह न बताया कि वह इबराहीम नख़ई नहीं हैं। आख़िरकार इसी हालत में इंतिक़ाल किया, ईसार और क़ुरबानी की एक ज़बरदस्त मिसाल क़ायम कर गए।

जिस रात उनका इंतिक़ाल हुआ, हज्जाज ने सपने में देखा कि एक जन्नती दुनिया से चला गया। सुबह को मालूम कराया तो पता चला कि इबराहीम ने क़ैदख़ाने में जान दे दी।

फ़र्ज़ की पहचान

हरम बिन जबान अब्दी को हज़रत उमर (रज़ि.) ने कोई ओहदा सुपुर्द किया था। सरकारी ओहदेदारों की सबसे बड़ी आज़माइश की वजह उनके दोस्त और रिश्तेदार होते हैं, जो उनसे अलग क़िस्म के फ़ायदे हासिल करना चाहते हैं।

हरम बिन जबान ने ओहदे पर आने के बाद अपने मकान के सामने इस तरह आग जलवा दी कि उन तक कोई आदमी न पहुँच सके।

उम्मीद के मुताबिक़ उनके दोस्त और रिश्तेदार आए, लेकिन बीच में आग रोक बनी हुई थी। दूर से सलाम करके खड़े हो गए। हरम ने कहा– "आइए, तशरीफ़ लाइए, आपका आना मुबारक।"

उन्होंने कहा– "हम किस तरह आएँ, हमारे और आपके दर्मियान तो आग रोक बनी हुई है।"

"तुम इतनी-सी आग पार नहीं कर सकते और मुझको दोज़ख़ की आग में झोंकना चाहते हो।" हरम ने उनको नसीहत के अंदाज़ में जवाब दिया।

लोग बात को समझ गए और वापस चले गए।

सूझ-बूझ

मोमिन मक्कार और फ़रेबी नहीं होता, मगर सूझ-बूझ और अक़्लमन्दी उसके अख़्लाक़ व सीरत का एक ज़रूरी हिस्सा होती है। जब अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने मक्का मुअज़्ज़मा से यसरिब (मदीना) को हिजरत फ़रमाई और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को साथ लेकर रात की तारीकी में निकल गए, तो कुछ दिन ग़ारे सौर में पनाह लिया, ताकि तलाश और जुस्तजू का हंगामा ख़त्म हो जाए और वे इत्मीनान के साथ सफ़र की शुरुआत करें।

लेकिन ज़रूरी था कि सौर के ग़ार में जो मक्का मुअज़्ज़मा से कुछ मील की दूरी पर था, ख़बरें मिलती रहें और मुशरिकों की सरगर्मियों की जानकारी

होती रहे। इस ग़रज़ के लिए हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अपने बेटे अब्दुल्लाह को हिदायत कर दी थी कि दिन भर मक्का में जो हालात पेश आएँ, सबकी इत्तिला हासिल करो और रात को हमारे पास आकर हमें आगाह करो।

इसमें इस बात का डर था कि अब्दुल्लाह के क़दम के निशानों को सुबह के वक़्त मक्का के मुशरिक देख लेंगे और भेद खुल जाएगा, इसलिए अबू बक्र (रज़ि.) ने यह तदबीर की थी कि उनका ग़ुलाम आमिर बिन फ़ुहैरा दिन को चरागाह में बकरियाँ चराता और रात के वक़्त ग़ार के पास ले आता। बकरियों का ताज़ा दूध अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को पिलाता और सुबह बकरियाँ इस तरह हाँककर ले जाता कि बकरियाँ अब्दुल्लाह के क़दमों के निशान को मिटाती हुई चली जातीं। तीन रात यह कार्रवाई हुई और इस ख़ूबी के साथ कि दुश्मनों को ज़रा भी शक न हुआ।

अक़्लमंदी

मोमिन बड़ा शरीफ़ होता है। वह किसी को धोखा नहीं देता, मगर वह बहुत अक़्लमंद और सूझ-बूझवाला भी होता है और आसानी से धोखे में नहीं आता।

ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक के ज़माने में इमाम शाबी एक मुअज़्ज़िज़ ताबई और मशहूर आलिम और फ़क़ीह थे। सूझ-बूझ में अपना जवाब नहीं रखते थे। अब्दुल मलिक उनसे बड़े अहम सरकारी काम लेता था।

एक बार क़ैसरे-रूम के यहाँ एक ख़ास पैग़ाम पहुँचाने के लिए उनको भेजा गया। क़ैसरे-रूम ने उनसे जितने सवाल किए, उन्होंने बड़े इत्मीनानबख़्श जवाब दिए। उनकी अक़्लमंदी का उसपर बड़ा असर हुआ और पूछा—

"तुम शाही घराने से ताल्लुक़ रखते हो?"

"नहीं, बल्कि मैं अरब का एक आम आदमी हूँ," इमाम शाबी ने जवाब दिया। क़ैसर यह सुनकर कुछ बुदबुदाया, फिर एक ख़त लिखकर दिया और हिदायत की कि अपने बादशाह को मेरा पैग़ाम पहुँचाने के बाद यह ख़त दे देना।

इमाम शाबी वापस आए, तमाम पैग़ामात पहुँचा दिए, मगर वह ख़त देना भूल गए। बाहर निकले तो याद आया और वापस जाकर क़ैसर का ख़त अमीरुल मोमिनीन के हवाले कर दिया।

अब्दुल मालिक ने ख़त पढ़ा और पूछा– "यह ख़त देने से पहले क़ैसर ने क्या बात कही थी?"

"उसने पूछा था कि क्या तुम शाही ख़ानदान से हो? मैंने जवाब दिया था, नहीं, बल्कि अरब का एक आम आदमी हूँ।" इमाम शाबी ने बताया।

यह कहकर वे वापस चले। अभी दरवाज़े पर ही पहुँचे थे कि अब्दुल मलिक ने दोबारा बुला लिया और कहा– "शाबी! तुमको ख़त का मज़मून मालूम है?"

"नहीं," इमाम शाबी ने जवाब दिया।

"लो और इसे पढ़ो," ख़लीफ़ा ने ख़त देते हुए कहा। लिखा था–

"मुझे उस क़ौम पर हैरत होती है कि ऐसे आदमी के होते हुए उसने एक-दूसरे आदमी को अपना बादशाह कैसे बना लिया?"

इमाम शाबी ने कहा, "अमीरुल मोमिनीन! अगर मुझे पहले से इसकी जानकारी होती तो इसे हरगिज़ न लाता। उसने यह बात इसलिए लिखी कि उसने आपको अपनी आँखों से देखा नहीं।"

"ख़ैर, इसको तो रहने दो, मगर तुम समझे कि उसके लिखने का मक़सद क्या है?"

"नहीं, अमीरुल मोमिनीन।" इमाम शाबी ने जवाब दिया।

अब्दुल मलिक ने कहा, "क़ैसर ने मुझे तुम्हारे ख़िलाफ़ भड़काकर तुम्हारे क़त्ल पर आमादा करना चाहा है।"

जब अब्दुल मलिक की यह बात क़ैसर तक पहुँची तो उसने कहा–

"मुसलमानों के बादशाह ने सही समझा, मेरा यही मक़सद था।"

दुनिया पर दीन को तर्जीह

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब (रज़ि.) की लड़की बहुत ख़ूबसूरत और काफ़ी पढ़ी-लिखी थी। ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक अपने वलीअहद (शहज़ादा) के लिए उसका रिश्ता चाहता था। मगर हज़रत सईद अमीरों और सुल्तानों को अपने मुँह लगाना ज़्यादा पसंद नहीं करते थे। वे उनकी ज़िन्दगी को ख़ालिस दुनियादारी, ऐश-पसंदी और दौलत, अमीरी, सरदारी व सल्तनत की चाह की वजह से बिल्कुल ग़लत समझते थे। उन्होंने साफ़ इंकार कर दिया। अब्दुल मलिक ने सख़्यितयाँ भी कीं, मगर वह राज़ी नहीं हुए।

इसके ख़िलाफ़ उन्होंने इस क़ीमती मोती को एक ग़रीब मगर दीनदार आदमी के हवाले कर दिया। जिसका हाल कुछ इस तरह है–

अबू विदाआ क़ुरैश का एक मामूली और ग़रीब आदमी था और हज़रत सईद की ख़िदमत में पाबंदी के साथ हाज़िर रहता था। एक बार वह कुछ दिनों तक ग़ैर-हाज़िर रहा। जब आया तो हज़रत सईद ने हाल मालूम किया–

"इतने दिन कहाँ ग़ायब रहे?"

जनाब! "मेरी बीवी का इंतिक़ाल हो गया था, इसलिए हाज़िर न हो सका।" अबू विदाआ ने अर्ज़ किया।

"तुमने मुझे क्यों ख़बर न की, मैं भी कफ़न-दफ़न में शरीक हो जाता?" हज़रत सईद ने कहा।

"मैंने ख़याल किया कि आपको क्यों तकलीफ़ दूँ?" अबू विदाआ ने कहा।

थोड़ी देर के बाद जब अबू बिदाआ उठने लगे, तो हज़रत सईद ने पूछा– "तुमने दूसरी बीवी का कोई इंतिज़ाम किया?"

"हज़रत! मैं ग़रीब आदमी हूँ। मुझे कौन अपना दामाद बनाएगा?" अबू विदाआ ने अर्ज़ किया।

“मैं बनाऊँगा, तुम तैयार हो?” हज़रत सईद ने फ़रमाया।

“हज़रत! इससे ज़्यादा मेरी क्या ख़ुशक़िस्मती हो सकती है?” अबू विदाआ ने कहा।

हज़रत सईद ने उसी वक़्त कुछ दिरहम की महर पर अबू विदाआ से अपनी लड़की का निकाह पढ़ा दिया। अबू विदाआ की ख़ुशी का कोई ठिकाना न था, मगर उसको यह फ़िक्र लगी हुई थी कि विदाई के लिए ज़रूरी साज़ व समान कहाँ से लाऊँगा। लेकिन हज़रत सईद ने इस मुश्किल को भी हल कर दिया।

शाम के वक़्त अपनी लड़की को साथ चलने का हुक्म दिया। पहले दो रकूअत नमाज़ ख़ुद पढ़ी, फ़िर दो रकूअत नमाज़ लड़की से पढ़वाई। इसके बाद अपनी लड़की को साथ लेकर अपने दामाद अबू विदाआ के घर पहुँचे। वे रोज़ा खोलकर बैठे ही थे कि किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। अबू विदाआ ने पूछा, “कौन?”

“मैं हूँ, सईद!”

“या ख़ुदा! सईद बिन मुसय्यिब तो अपने घर और मस्जिद के अलावा कहीं आते-जाते नहीं, यह सईद कौन है?” अबू विदाआ ने अपने मन में कहा, फिर उठकर दरवाज़ा खोला।

हज़रत सईद को देखकर अबू विदाआ बोले–

“हज़रत! मुझे तलब फ़रमा लिया होता, ख़ुद तशरीफ़ लाने की तकलीफ़ क्यों की?”

“मुझे तुम्हारे पास आना चाहिए था। तुम अकेले हो, जबकि तुम्हारी बीवी मौजूद है। मैंने सोचा, अकेले क्यों रहो, इसलिए तुम्हारी बीवी को लेकर आया हूँ। लो, यह है तुम्हारी बीवी।

यह कहकर अपनी लड़की की तरफ़ इशारा किया जो शर्म से पीछे खड़ी हुई थी। फिर लड़की को घर के अन्दर पहुँचा दिया और दरवाज़ा बन्द करके

अपने घर वापस आ गए।

अबू विदाआ ख़ुशी और हैरत में डूबे हुए थे। बीवी को लेकर अन्दर आए और फिर छतपर चढ़कर पड़ोसियों को पुकारा और अपनी शादी का एलान किया कि "आज सईद बिन मुसय्यिब ने अपनी लड़की का निकाह मेरे साथ कर दिया और उसे मेरे घर पहुँचा गए हैं।"

अबू विदाआ की माँ को ख़बर हुई तो वह दौड़ी-दौड़ी आई और कहा कि अगर बग़ैर सँवारे हुए तुम उसके पास गए तो तुम्हारी शक्ल न देखूँगी।

चुनांचे दुल्हन को बनाया-सँवारा गया। जब दुल्हन को उनके सामने लाया गया तो वह चाँद की तरह दमक रही थी, पढ़ी-लिखी, क़ुरआन की हाफ़िज़, हदीस की आलिम और शौहर के हुक़ूक़ अदा करनेवाली फरमांबरदार बीवी!

ऐसी वफ़ादार, ख़िदमत गुज़ार नेक बीवी पाकर अबू विदाआ बाग़-बाग़ हो गए और ख़ुदा के हुज़ूर सजदे में गिर गए।

ऐब छुपाना

अपने मुसलमान भाई के ऐब पर परदा डालना भी इस्लामी अख़्लाक़ का एक ज़रूरी हिस्सा है और कभी-कभी इसके बड़े अच्छे नतीजे निकलते हैं।

इब्ने हरता एक दिन सुबह को बाहर निकले तो एक आदमी को नशे की हालत में पाया। आप उसको ज़बरदस्ती अपने घर घसीट लाए इसके बाद हज़रत सईद बिन मुसय्यिब (रज़ि.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और पूछा–

"मैंने एक आदमी को नशे की हालत में पाया है। अब मैं क्या करूँ?" उसको हाकिम के सुपुर्द करके सज़ा दिलाऊँ?"

हज़रत सईद ने जवाब दिया–

"अगर तुम उसको अपने कपड़ों में छिपा सको तो छिपा लो।"

इब्ने हरता घर वापस आए। इतने में उस आदमी का नशा भी उतर चुका

था। उनको देखकर शर्म से उसका चेहरा झुक गया। इब्ने हरता ने कहा–

"तुम्हें शर्म नहीं आती। अगर तुम सुबह को इस हालत में पकड़ लिए जाते तो क्या होता? तुमको सज़ा मिलती और तुम किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहते। तुम्हारी आबरू ख़ाक में मिल जाती और तुम्हारी गवाही तक न क़बूल की जाती।"

उस शराबी पर इस एहसान भरी नसीहत का यह असर हुआ कि उसने शराब पीने से तौबा कर ली।

क़ुरआन की तिलावत से लगाव

हज़रत अस्वद बिन यज़ीद ताबई रोज़ाना क़ुरआन की तिलावत करते थे। मरज़ुल मौत में भी इस मामूल में फ़र्क़ न आया, जब कमज़ोरी की वजह से हिल भी न सकते थे तो अपने भांजे इबराहीम नख़ई का सहारा लेकर क़ुरआन पढ़ते थे। आख़िरी वक़्त में हिदायत की कि मुझे कलिमा तैयिबा पढ़ाते रहना, ताकि जब दम निकले तो ज़बान पर कलिमा "ला इला-ह इल्लल्लाह" हो।

सलाम करना

अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का इर्शाद है, "सलाम फैलाओ।" इस्लामी समाज में लोग हर मिलनेवाले को सलाम करते हैं, चाहे एक-दूसरे को आपस में जानते हों या न जानते हों।

हज़रत अब्दुर्रहमान बिन अस्वद (रह.) एक बुज़ुर्ग ताबई थे। उनकी आदत थी कि जब बाहर निकलते तो जो आदमी रास्ते में मिलता उसे सलाम करते, यहाँ तक कि यहूदी और ईसाई को भी सलाम करते थे। उनके एक दोस्त ने उनसे कहा– "आप इन मुशरिकों को भी सलाम करते हैं?"

"सलाम मुसलमानों की निशानी है। मैं उनको सलाम करता हूँ, ताकि ये पहचान लें कि मैं मुसलमान हूँ।" अब्दुर्रहमान ने छूटते ही जवाब दिया।

दुश्मनों से मुहब्बत

आमिर बिन अब्दुल्लाह अंबरी एक ख़ुदापरस्त और इबादतगुज़ार ताबई थे। उनके दुश्मनों ने सियासी मतभेद की वजह से अमीर मुआविया (रज़ि.) के कान भरे और उनको बसरा से शाम भेज दिया गया। बाद में जब सारे इलज़ाम ग़लत साबित हुए तो वापसी की इजाज़त दे दी गई।

अमीर मुआविया (रज़ि.) ने फ़रमाया– "आपका जी चाहे तो आप बसरा वापस जा सकते हैं।"

"अब मैं ऐसे शहर में वापस नहीं जाऊँगा, जहाँ के लोगों ने मेरे साथ ऐसा सुलूक किया।" आमिर ने जवाब दिया।

आमिर ने बाक़ी ज़िन्दगी शाम ही में गुज़ारी, मगर अपने दुश्मनों के हक़ में भी वे दुआ ही करते थे, बद-दुआ नहीं देते थे। वे दुआ किया करते थे–

> "ऐ अल्लाह! जिन लोगों ने मेरी चुग़ली खाई है और मुझे वतन से निकलवाया और मेरे भाइयों से मुझको जुदा कराया है, उनके माल और उनकी औलाद में तरक़्क़ी दे, उन्हें तन्दुरुस्त रख और उनकी उम्र बढ़ा।"

सच्चाई

सच्चाई इस्लामी ज़िन्दगी की बुनियाद है। हमारे बुज़ुर्गों के किरदार का यह बड़ा अहम पहलू था। हज़रत सालिम बिन अब्दुल्लाह, जो हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) के बेटे थे, एक मशहूर ताबई थे। क़ुरआन की तफ़्सीर बयान करनेवाले, हदीस के माहिर और फ़क़ीह थे। एक दिन कपड़ा ख़रीदने बाज़ार गए।

मरवान बिन ज़ुबैर कपड़ों का एक ताजिर था। ख़ुद उसका बयान है कि सालिम मेरी दुकान पर आए और मुझसे एक कपड़ा जिसे "सतगज़ा" कहते थे, माँगा। मैंने उनके सामने सतगज़ा फैला दिया, उन्होंने नापने को कहा, मगर वह सात गज़ से कम निकला।

"तुमने कहा था कि यह सतगज़ा है?" सालिम ने पूछा।

"जी हाँ, इसे सतगज़ा ही कहते हैं," मरवान ने जवाब दिया।

"मगर यह तो सात गज़ से कम है?" सालिम ने फिर मालूम किया।

"यह सात गज़ से कम होता है, मगर आम ज़बान में इसे सतगज़ा ही कहते हैं," मरवान ने बताया।

"तो इसका मतलब यह कि इसका नाम भी झूठा है," सालिम बोल पड़े।

इस्लामी ज़िन्दगी की पाकीज़गी झूठ की मामूली शक्ल भी गवारा नहीं करती।

शर्म व हया

एक दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल.) अपने घर में पिंडलियाँ खोले लेटे हुए थे। इतने में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) आए और इजाज़त चाही। आपने उन्हें अन्दर बुला लिया और वैसे ही लेटे रहे।

फिर हज़रत उमर (रज़ि.) आए और इजाज़त तलब की। नबी (सल्ल.) ने उनको भी बुला लिया और पहले की तरह लेटे रहे।

इतने में हज़रत उसमान (रज़ि.) भी आ गए और अन्दर आने की इजाज़त तलब की। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उनको भी अन्दर बुला लिया और ख़ुद उठकर बैठ गए, कपड़ों को ठीक करके पिंडलियों को ढाँक लिया।

थोड़ी देर के बाद जब ये लोग चले गए तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अर्ज़ किया—

"ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे बाप अबू बक्र आए तो आपने हरकत न की, उमर आए तो आप वैसे ही लेटे रहे, लेकिन जब उसमान आए तो आप उठकर बैठ गए और कपड़े को दुरुस्त कर लिया। ऐ अल्लाह के रसूल! इसकी क्या वजह है?"

"हुमैरा! क्या मैं उस आदमी से हया न करूँ, जिससे फ़रिश्ते हया करते हैं? उसमान हयादार आदमी हैं। मुझे ख़याल हुआ कि अगर इसी हालत में उनको अन्दर बुला लिया गया तो कहीं वह हया व शर्म की वजह से वापस न चले जाएँ और जो उन्हें कहना है, वह कह न सकें।"

अख़लाक़ की शराफ़त

मुसलमान अमीरों और बादशाहों में से कुछ अपने अख़लाक़ की शराफ़त के लिए नुमायाँ हैसियत रखते हैं। अपने शाही जाहो-जलाल के बावजूद वे बुज़ुर्गों और आलिमों का एहतिराम करते थे। हज़रत सईद बिन मुसय्यिब एक सच्चे, बेबाक और अमीरों और बादशाहों के ख़ौफ़ से बेनियाज़ बुज़ुर्ग थे। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) मदीना के गर्वनर थे। मस्जिदे नबवी का तामीरी काम हो रहा था। ख़लीफ़ा वलीद ख़ुद इस काम की रफ़्तार को देखने के लिए आए। दस्तूर के मुताबिक़ तमाम लोगों को मस्जिद से निकाल दिया गया। हज़रत सईद एक कोने में बैठे हुए ख़ुदा की याद में लगे हुए थे, उनको उठाने की किसी को हिम्मत न हुई। एक आदमी ने अदब से अर्ज़ किया कि आप इस वक़्त उठ जाते तो अच्छा होता।

उन्होंने जवाब दिया– "मेरे उठने का जो वक़्त है, उससे पहले नहीं उठूँगा।"

"अच्छा न उठिए, लेकिन कम-से कम इतना तो कीजिएगा कि जब अमीरुल मोमिनीन इधर से गुज़रें तो सलाम के लिए खड़े हो जाइएगा।"

"ख़ुदा की क़सम! मैं उसके लिए खड़ा नहीं हो सकता।"

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) उनके दर्जे और उनकी तबीयत को जानते थे, इसलिए उनको वलीद की नज़र से बचाने के लिए वलीद को दूसरी दिशाओं में फिराते रहे, लेकिन जब वह क़िब्ले की तरफ़ बढ़ा तो उसकी नज़र सईद बिन मुसय्यिब पर पड़ गई। उसने पूछा--

"ये कौन बुज़ुर्ग हैं, सईद तो नहीं हैं?"

"हाँ, अमीरुल मोमिनीन!" उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने मजबूर होकर जवाब दिया, मगर अमीरुल मोमिनीन! अब यह बहुत बूढ़े हो गए हैं, आँखों से भी कम दिखाई देता है। अगर आपको पहचान सकते तो सलाम के लिए ज़रूर उठते। "हाँ, मैं इनकी हालत से वाक़िफ़ हूँ, इनको तकलीफ़ देने की ज़रूरत नहीं, मैं ख़ुद इनके पास चलता हूँ।"

इसके बाद ख़लीफ़ा वलीद घूमते-घामते हज़रत सईद बिन मुसय्यिब के पास पहुँचे और कहा– "शैख़! कैसा मिज़ाज है?"

शैख़ ने बैठे-बैठे जवाब दिया– "अल-हम्दु लिल्लाह! अच्छा हूँ, कहिए आपका मिज़ाज कैसा है?"

और थोड़ी बात-चीत के बाद ख़लीफ़ा वलीद यह कहते हुए लौट गए कि "ये पुरानी यादगारें हैं।"

अच्छा अख़लाक़

किसी का दिल रख लेना और अच्छे अख़लाक़ से पेश आना इस्लामी समाज की जान है। इससे आपसी ताल्लुक़ात बेहतर रहते हैं। एक मशहूर फ़ारसी कहावत है कि "दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबरस्त" (दिल का रख लेना हज्जे अकबर जैसा है।)

हज़रत मिसअर बिन कदाम दूसरों के जज़्बात का बड़ा ख़्याल रखते थे। अगर कभी कोई आदमी उन्हें ऐसी हदीस सुनाता जिसको वह उस आदमी से ज़्यादा जानते होते तो सिर्फ़ इस ख़याल से कि उसका दिल न टूट जाए, वह अनजान बनकर बड़ी ख़ामोशी से हदीस सुनते रहते और उसपर बिल्कुल यह ज़ाहिर न होने देते कि वे हदीस उससे ज़्यादा जानते हैं। इस तरीक़े में हदीस के एहतिराम का जज़्बा भी शामिल होता था।

बेहतरीन अमल

हज़रत मुहम्मद बिन मुस्कन्दर मदीना मुनव्वरा में रहते थे और बहुत बड़े बुज़ुर्ग थे। इमाम मालिक उनको 'सय्यिदुल क़ुर्रा" कहते थे। उनसे एक आदमी ने पूछा–

"आपके नज़दीक सबसे बेहतर अमल कौन-सा है?"

"मुसलमानों को ख़ुश करना"—मुहम्मद बिन मुस्कन्दर ने जवाब दिया।

"और सबसे पसन्दीदा तोहफ़ा?"—पूछनेवाले ने दोबारा पूछा।

"दोस्तों के साथ अच्छा व्यवहार करना।"—सय्यिदुल क़ुर्रा ने जवाब दिया।

वादे की पाबन्दी

हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िलाफ़त के दौर में ईरानियों ने एक आख़िरी कोशिश इस्लाम की फ़तह (कामयाबियों) को रोकने के लिए की और कमसिन यज़्दगुर्द का सरपरस्त पौरानदुख़्त ने ख़ुरासान के गवर्नर रुस्तम को, जो बहादुरी में मशहूर था, जंग का वज़ीर बनाकर जंग की मुहिमें उसके सुपुर्द कर दीं। हज़रत उमर (रज़ि.) ने हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) को एक भारी फ़ौज देकर ईरानीयों की ताक़त व शौकत तोड़ने के लिए रवाना फ़रमाया।

अबू उबैदा (रज़ि.) अभी रास्ते में थे कि रुस्तम ने फ़ुरात के ज़िलों में ग़दर (विद्रोह) करा दिया और जीते हुए इलाक़े मुसलमानों के हाथ से निकल गए। पौरानदुख़्त ने एक शानदार फ़ौज नर्सी और जाबान दो सिपहसालारों की सरकर्दगी में भेजी। हालात बेहद नाज़ुक थे और मुसलमानों को बड़ा ग़ुस्सा था। चुनाँचे जब जाबान की फ़ौज नमारिक़ पहुँचकर अबू उबैदा (रज़ि.) की फ़ौज से भिड़ गई तो इस्लामी मुजाहिदों ने इस जोश के साथ हमला किया कि ईरानी फ़ौज के पाँव उखड़ गए। उसके मशहूर सरदार मारे गए और सिपहसालार गिरफ़्तार हो गया, लेकिन जिस मुजाहिद ने उसे गिरफ़्तार किया था, वह उसे पहचानता नहीं था।

जाबान ने उससे कहा, "मैं बूढ़ा आदमी तुम्हारे किस काम का हूँ? मुआवज़े में दो ग़ुलाम ले लो और मुझे छोड़ दो।"

सादा दिल मुसलमान धोखे में आ गया और उसने मंज़ूर कर लिया।

जब उसे रिहा किया जा रहा था तो उसकी हक़ीक़त मालूम हो गई और

मुसलमानों ने शोर मचाया कि ऐसे अहम दुश्मन को नहीं छोड़ना चाहिए। लेकिन इस्लामी सिपहसालार ने कहा–

"इस्लाम में बद-अहदी जाइज़ नहीं। एक मामूली सिपाही ने ही सही, मगर जो शर्त उससे की गई है, उसको पूरा किया जाएगा।"

चुनाँचे जाबान जैसे दुश्मन को छोड़ दिया गया।

माँ-बाप की ख़िदमत

माँ-बाप का अदब, ख़िदमत और इताअत व फ़रमांबरदारी इस्लामी ज़िन्दगी का ज़रूरी हिस्सा है।

मुहम्मद बिन सीरीन की माँ हिजाज़ की रहनेवाली थीं। उनको रंगीन और बेहतरीन कपड़ों का शौक़ था।

इब्ने सीरीन माँ के इस शौक़ का बड़ा ख़याल रखते और जब कपड़ा ख़रीदते तो उसकी नर्मी और उमदगी को देखते, पायदारी को न देखते। ईद के लिए अपने हाथ से अपनी माँ के कपड़े रंगते, माँ के सामने कभी बुलंद आवाज़ से न बोलते, इस तरह बातें करते जैसे कोई राज़ की बात कह रहे हैं।

बुरी सोहबत से बचना

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अभी इस्लाम में दाख़िल नहीं हुए थे, मगर अल्लाह का डर, नेकी और पाकबाज़ी उनकी सीरत के अहम पहलू थे। इस्लाम से पहले की बात है। एक आदमी उनको किसी नामालूम रास्ते से ले चला और फ़ख़्र के तौर पर कहा–

"यह वह रास्ता है जिसमें ऐसे बदमाश और आवारा लोग रहते हैं कि इस तरफ़ से गुज़रने में भी शर्म आती है।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने सुना तो वहीं रुक गए और कहा, "मैं ऐसे शर्मनाक रास्ते से नहीं जा सकता।"

हाफ़िज़े की ताक़त

हाफ़िज़ा मुसलमान आलिमों की एक ख़ास ख़ूबी है।

हिशाम बिन अब्दुल मलिक ने इमाम मुहम्मद बिन शिहाब ज़ोहरी से दरख़्वास्त की कि उसके लड़के के लिए कुछ हदीसें लिख दीजिए। इमाम ज़ोहरी ने हाफ़िज़े से चार सौ हदीसें लिखा दीं।

एक महीने के बाद हिशाम ने कहा, "वे हदीसें गुम हो गईं, मेहरबानी करके वही हदीसें दोबारा लिखा दीजिए।"

इमाम ज़ोहरी ने फिर वही हदीसें लिखा दीं।

हिशाम ने दोनों मस्विदों का मुक़ाबला किया तो एक हर्फ़ का भी फ़र्क़ नहीं था।

हक़ पर जमे रहना

कुफ़्फ़ारे क़ुरैश इस्लाम की दावत की तरक़्क़ी से सख़्त परेशान थे और मशविरा कर रहे थे कि इस मुसीबत का क्या इलाज किया जाए।

उमर बिन ख़त्ताब जो बड़े बहादुर और बड़े ग़ुस्सेवाले थे, बिगड़कर उठे और क़सम खाई कि आज इस झगड़े को ख़त्म कर के ही रहूँगा।

यह कहकर वे गले में तलवार लटकाए अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की तलाश में निकले। मुसलमानों को भी इन साज़िशों और मशविरों की पल-पल की ख़बरें मिल रहीं थीं और लोग क़ुदरती तौर पर फ़िक्रमन्द थे।

उमर बिन ख़त्ताब, ग़ुस्से में भरे हुए, जा रहे थे कि रास्ते में नुऐम बिन अब्दुल्लाह मिल गए। बिगड़े हुए तेवर देखकर पूछा—

"उमर! ख़ैर तो है? किधर का इरादा है?"

"आज मुहम्मद का फ़ैसला करने जाता हूँ, जो हमारे बुतों का इनकार करते और ख़ुदा की इबादत पर उभारते हैं।" उमर ने जवाब दिया।

"मगर उमर! पहले अपने घर की तो ख़बर लो," नुऐम ने बताया,

"बाद में बाहर की फ़िक्र करना।"

"क्यों मेरे घर में क्या है?" उमर ने पूछा।

"तुम्हारी बहन और बहनोई मुसलमान हो चुके हैं," नुऐम ने बताया।

"अच्छा, यह बात है! बेहतर है, पहले उन्हीं की ख़बर लेता हूँ।" उमर ने एलान किया।

थोड़ी देर में उमर अपनी बहन के दरवाज़े पर थे। अन्दर से कुछ पढ़ने की आवाज़ आ रही थी। ग़ज़बनाक उमर ने दरवाज़ा खटखटाया। बहन भाई का अन्दाज़ समझ गई। क़ुरआन छिपा दिया फिर दरवाज़ा खोला।

दाख़िल होते ही उमर ने पूछा– "यह तुम क्या पढ़ रही थीं?"

"आपको इससे क्या ग़रज़?" बहन ने नर्मी से जवाब दिया।

"मुझसे छिपाने की कोशिश बेफ़ायदा है। मैं सुन चुका हूँ। तुम दोनों बेदीन हो गए हो।" उमर ने ग़ुस्से में कहा और यह कहकर बहनोई पर पिल पड़े और उनको मारना शुरू कर दिया।

शौहर को बचाने के लिए उनकी बीवी बीच में आ गईं।

ग़ुस्से से भरे उमर ने बहन की भी कुछ परवाह न की और उसको भी बेतहाशा मारा-पीटा, यहाँ तक कि उनके बदन से ख़ून टपकने लगा मगर ईमान और सब्र की तस्वीर बनी बहन ने कहा, "उमर! चाहे हमें जान से मार डालो, लेकिन हम इस्लाम से अलग नहीं हो सकते।"

ये अलफ़ाज़ तीर की तरह उमर के सीने में उतर गए। एक तरफ़ प्यारी बहन का लहूलुहान जिस्म, दूसरी तरफ़ उसका पक्का इरादा और उसका सब्र। उमर के दिल और रूह में हक़ तीर की तरह उतर गया और आँसू बेइख़्तियार उनकी आँखों से जारी हो गए। फ़ौलाद का बना हुआ दिल मोम की तरह नर्म हो गया। उन्होंने आज़िज़ी से कहा–

"अच्छा, तुम लोग जो कुछ पढ़ रहे थे, मुझे भी सुनाओ।"

फ़ातिमा बिन्त ख़त्ताब (रज़ि.) ने क़ुरआन के पन्ने सामने लाकर रख

दिए। उमर की निगाह पड़ी तो ये आयतें सामने थीं–

सब्ब-ह लिल्लाहि माफ़िस्समावाति वल अर्ज़ि.....बिज़ातिस्सुदूर।

तर्जुमा :

"अल्लाह की तस्बीह (गुणगान) की है हर उस चीज़ ने जो ज़मीन और आसमानों में है, और वही प्रभूत्वशाली और तत्तवदर्शी है। ज़मीन और आसमानों के राज्य का मालिक वही है, ज़िन्दगी प्रदान करता है, और उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है। वही प्रथम भी है और अन्तिम भी, और गोचर (ज़ाहिर) भी है और अगोचर (छिपा) भी और उसे हर चीज़ का ज्ञान है। वही है जिसने आसमानों और ज़मीन को छह दिनों में पैदा किया और फिर सिंहासन पर विराजमान हुआ। उसके ज्ञान में है जो कुछ ज़मीन में जाता है और जो कुछ उससे निकलता है और जो कुछ आसमान से उतरता है और जो कुछ उसमें चढ़ता है। वह तुम्हारे साथ है जहाँ भी तुम हो। जो काम भी तुम करते हो उसे वह देख रहा है। वही ज़मीन और आसमानों के राज्य का मालिक है और सारे मामले फ़ैसले के लिए उसी की ओर रूजू किए जाते हैं।" (क़ुरआन, 57:1-6)

उमर ये आयतें सुन रहे थे और उनका दिल पिघल-पिघलकर आँखों से बह रहा था। जब कलामे इलाही की यह सदा (आवाज़) कानों में पड़ी–

'आमिनू बिल्लाहि व रसूलिही' (अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान ले आओ) तो गोया ग़ैब की आवाज़ ने उमर को ख़ुद पुकारा था, वे बेइख़तियार होकर बोल उठे–

'अश्हदु अल-लाइला-ह इल्लल्लाह व अश्हदु अन-न
मुहम्मदर्रसूलुल्लाह।'
(मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के अलावा कोई माबूद नहीं और मैं
गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।)

अभी कुछ देर पहले जो आदमी मुहम्मद (सल्ल.) को क़त्ल करने और इस्लाम को मिटा देने के लिए तलवार लेकर चला था, वह ख़ुद इस्लाम से मग़्लूब होकर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की ख़िदमत में हाज़िर हो गया और

एक़ मुसलमान औरत के ईमान पर जमे रहने के वाक़े ने वह करिश्मा कर दिखाया जिसने इस्लामी तारीख़ का रुख़ बदल दिया।

रसूल की इताअत

रसूल (सल्ल.) की इताअत के मामले में इस्लाम किसी समझौते और ख़तरे का क़ायल नहीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने इंतिक़ाल से पहले हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि.) की सरकर्दगी में एक फ़ौजी दस्ते को मुल्क शाम (सीरिया) की मुहिम पर जाने के लिए तैयार किया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो पूरा मुल्क ख़तरों में घिर गया। नुबूवत के झूठे दावेदारों ने उठकर अपनी नुबूवत ज़माने की कोशिश की। मुनाफ़िक़ों ने इस्लामी निज़ाम को छिन्न-भिन्न करने के लिए साज़िशें शुरू कर दीं। इस्लाम से फिरे लोगों ने इस्लाम के ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा उठा लिया और ज़कात का इनकार करनेवालों ने इस्लामी हुकूमत की इताअत से मुँह मोड़ लिया।

हज़रत उसामा (रज़ि.) इस्लामी फ़ौज लिए हुए मदीना से बाहर जरफ़ में पड़ाव डाले हुए थे और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने अपने हाथ से जो झंडा खोलकर उनको दिया था, फ़िज़ा में लहरा रहा था। सहाबा किराम (रज़ि.) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को मशविरा दिया कि शाम की मुहिम को मुल्तवी कर दीजिए और उस फ़ौज को पहले देश के अन्दर के फ़ित्नों की जड़ काटने के लिए इस्तेमाल कीजिए, लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने फ़रमाया–

> ''नबी (सल्ल.) ने जो मुहिम मुक़र्रर फ़रमाई है, उसको मंसूख़ नहीं कर सकता। जो झंडा हुज़ूर (सल्ल.) ने रूम के मुक़ाबले के लिए बुलंद किया है, न उसको लपेट सकता हूँ और न उसामा (रज़ि.) को किसी दूसरी तरफ़ रवाना कर सकता हूँ।''

लोगों ने कहा– ''अमीरुल मोमिनीन! इस वक़्त ख़ुद मदीना ख़तरे में है। यह मुनासिब नहीं कि फ़ौज को बाहर की मुहिम पर भेजा जाए।''

इस पर आपने बिगड़कर फ़रमाया–

''ख़ुदा की क़सम! अगर मदीना इस तरह आदमियों से ख़ाली हो जाए

कि दरिंदे आकर मेरी टाँग खींचने लगें, तब भी मैं इस मुहिम को नहीं रोकूँगा।''

हज़रत उसामा (रज़ि.) हुक्म के मुताबिक़ फ़ौज को लेकर रवाना हो गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) पैदल उनकी सवारी के साथ दूर तक गए।

हज़रत उसामा (रज़ि.) ने अर्ज़ किया—

''अमीरुल मोमिनीन! ख़ुदा के लिए आप भी घोड़े पर सवार हो जाइए, वरना मैं भी उतरता हूँ।''

अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया—

''उसामा! ख़ुदा तुम्हारी मदद करे, इसमें क्या हरज है अगर मैं थोड़ी देर तक अपने पाँव में धूल सनी रखूँ। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि अल्लाह की राह में बढ़नेवाले हर क़दम के बदले सात सौ नेकियाँ लिखी जाती हैं।''

हुकूमत और एहसासे-ज़िम्मेदारी

इस्लामी हाकिमों का किरदार

हज़रत उमर (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो उनसे बयान किया गया कि लोग आपकी सख़्त मिज़ाजी की वजह से डरे हुए हैं कि देखिए अब क्या होता है। यह सुनकर उन्होंने लोगों को ज़मा होने का हुक्म दिया और मिंबर पर चढ़कर तक़रीर की–

"मुझे मालूम हुआ है कि लोग मेरी सख़्तियों से घबराते हैं और कहते हैं कि उमर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के ज़माने में हमपर सख़्ती करता था, फिर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो उनके ज़माने में भी हमारे साथ सख़्ती से पेश आता रहा और अब तो वह ख़ुद ख़लीफ़ा हो गया। ख़ुदा जाने अब वह क्या करेगा! लोगों ने सच कहा, मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का एक ख़ादिम था, उनकी रहमत व शफ़क़त का दर्जा कौन हासिल कर सकता है। अल्लाह तआला ने उन्हें रऊफ़ व रहीम (मेहरबानी और रहमकरनेवाला) कहा है, जो ख़ुद अल्लाह तआला के नाम हैं। मैं उस हाल में नंगी तलवार बन जाता था। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) इस नंगी तलवार को म्यान में डाल देते थे या नंगी ही रखते थे, ताकि वह अपना वार पूरा करें। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भी नर्म मिज़ाज और हलीम थे। मैं उनका भी ख़ादिम व मददगार था। उनकी नर्मी के साथ मैं अपनी सख़्ती को मिला देता था और नंगी तलवार हो जाता था। वे चाहते थे तो वार करता था वरना म्यान में डाल लेते थे, लेकिन अब जबकि मैं ख़ुद ख़लीफ़ा हो गया हूँ, तो वह सख़्ती दोगुनी हो गई है, लेकिन सिर्फ़ उन लोगों के लिए जो मुसलमानों पर ज़ुल्म करेंगे। रहे नेक और ईमानदार तो मैं उनके लिए उनसे ज़्यादा नर्म हूँ जितने वे आपस में हैं।"

लोगों ने यह सुना तो उन्हें बड़ी तसल्ली मिली।

इस्लामी हुकूमत की ख़ूबियाँ

जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के हाथ पर मुसलमानों ने बैअ्त कर ली, तो वे मिंबर पर तशरीफ़ ले गए और हम्द व सना के बाद फ़रमाया–

> "लोगो! मैं तुम्हारा हाकिम बनाया गया हूँ, मगर मैं तुम सबसे बेहतर नहीं हूँ। अगर मैं अच्छा काम करूँ तो मेरी मदद करो, और अगर बुराई की तरफ़ जाऊँ तो मुझे सीधा कर दो। मैं सच्चाई को अपना तरीक़ा बनाऊँगा, क्योंकि सच्चाई अमानत है, और झूठ से बचूँगा, क्योंकि झूठ ख़ियानत है। तुम्हारा कमज़ोर भी मेरे नज़दीक मज़बूत होगा, जब तक कि मैं उसका हक़ न दिला दूँ और तुममें जो ताक़तवर है वह मेरे नजदीक कमज़ोर होगा जब तक कि उससे दूसरों का हक़ न दिला दूँ। इन्शा-अल्लाह!– जो क़ौम अल्लाह के रास्ते में जिहाद करना छोड़ देती है, ख़ुदा उसको ज़लील व ख़ार कर देता है और जिस क़ौम में बदकारी आम हो जाती है, ख़ुदा उसकी मुसीबत को भी आम कर देता है। अगर मैं ख़ुदा और रसूल (सल्ल.) की इताअत करूँ तो मेरी इताअत करो। और अगर ख़ुदा और रसूल (सल्ल.) की नाफ़रमानी करूँ तो मेरी इताअत तुम पर वाजिब नहीं— अच्छा अब नमाज़ के लिए खड़े हो जाओ। अल्लाह तुम पर अपनी रहमतें नाज़िल फ़रमाए।"

इस्लामी हुकूमत का असर

हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िलाफ़त के ज़माने में ईरान का बादशाह यज़्दगुर्द इस्लामी फ़ौज की ताब न लाकर भागा और ख़ाक़ाने चीन के राज्य की सीमाओं में दाख़िल हो गया। ख़ाक़ान (अर्थात उस समय के चीन और तुर्किस्तान के बादशाहों की उपाधि) ने न सिर्फ़ उसको पनाह दी, बल्कि एक भारी सेना लेकर उसकी मदद के लिए ख़ुरासान पहुँचा और बलख़ होता हुआ मर्व की ओर बढ़ा, लेकिन हज़रत अह्नफ़ बिन क़ैस ताबई ने फ़ौज लेकर रास्ते ही में उसको रोक दिया। कुछ दिनों के बाद ख़ाक़ान ने मायूस होकर फ़ौज को कूच का हुक्म दे दिया। जब यज़्दगुर्द को जो मर्व का घेराव किए हुए था,

ख़ानक़ान की वापसी की ख़बर मिली, तो उसने हिम्मत छोड़ दी और ख़ज़ाना लेकर तुर्किस्तान जाने का इरादा कर लिया, लेकिन ख़ुद ईरानियों ने उसको रोका और कहा कि तुर्किस्तानियों का कोई मज़हब नहीं, मगर मुसलमान एक मज़हब और वादे की पाबन्द क़ौम है, अगर आप अपना देश छोड़ना ही चाहते हैं तो मुसलमानों से सुलह कर लीजिए। मगर वह न माना। इसपर उन्होंने यह देखकर कि देश की दौलत बाहर जा रही है, लड़कर यज़्दगुर्द से कुल ख़ज़ाना छीन लिया और यज़्दगुर्द ख़ाली हाथ तुर्किस्तान भाग गया।

यज़्दगुर्द के फ़रार के बाद ईरानियों ने हज़रत अह्नफ़ बिन क़ैस से, जो मुसलमानों के सेनापति थे, समझौता कर लिया और ईरान का पूरा ख़ज़ाना उनके हवाले कर दिया। हज़रत अह्नफ़ ने उनके साथ इतना शरीफ़ाना बर्ताव किया कि ईरान अफ़सोस करते थे कि वे अब तक मुसलमानों की बरकतों से क्यों महरूम रहे!

इस्लामी हुक्मों को लागू करना

इस्लामी हुक्मों को लागू करना इस्लामी हुकूमत का अस्ल मक़सद है। अगर इस्लामी हुक्म लागू नहीं होते तो इस्लामी हुकूमत का वजूद बेकार है।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की ख़िलाफ़त की शुरुआत के साल ही एक गिरोह ने ज़कात देने से इनकार कर दिया और कहा कि हम तो नबी (सल्ल.) को ज़कात देते थे, अब नहीं देंगे। यह गिरोह तौहीद व रिसालत का इक़रार करता था और मुसलमान होने का दावेदार था, मगर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने हुक्म दिया–

"ज़कात के इनकारियों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी जाए।"

"अमीरुल मोमिनीन! आप एक ऐसी जमाअत के ख़िलाफ़ तलवार किस तरह उठा सकते हैं जो तौहीद व रिसालत का इक़रार करती है और सिर्फ़ ज़कात की इनकारी है।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने अर्ज़ किया।

"ख़ुदा की क़सम! अगर एक बकरी का बच्चा भी अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को दिया जाता था और कोई आदमी देने से इनकार करेगा तो मैं

उसके ख़िलाफ़ जिहाद करूँगा।" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जवाब दिया।

"लेकिन मुसलमानों के ख़िलाफ़ तलवार उठाने के लिए आपके साथ कौन-कौन निकलेगा?" लोगों ने कहा।

"अगर कोई व्यक्ति नहीं निकलेगा तो अबू बक्र अकेला निकल ख़ड़ा होगा।" अमीरुल मोमिनीन ने एलान फ़रमाया और इस जवाब को सुनकर लोगों का शक दूर हो गया।

ज़कात के इनकारियों को ख़लीफ़ा-ए-वक़्त का ज़कात वुसूल करने का पक्का इरादा मालूम हुआ तो उनके होश ठिकाने आ गए और वे ख़ुद ज़कात लेकर मदीना हाज़िर हो गए।

इस्लाम की तब्लीग़

हंगामी तक़रीरों और मुनाज़िरों से कभी-कभार कोई आदमी इस्लाम की पनाह में आ जाता है, लेकिन जब इस्लामी हुकूमत अपने पूरे तक़ाज़ों के साथ काम कर रही होती है तो कुफ़्र की दुनिया को उलट कर रख देती है।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने हुकूमत की गद्दी पर आते ही हुक्म दिया कि–

> "जो ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम प्रजा) इस्लाम को अपना ले, उसका जिज़या माफ़ कर दिया जाए।"

इससे पहले इस्लाम अपनाने के बाद भी ज़िम्मी का जिज़या क़ायम रहता था। बनी उमैया के हाकिमों के नज़दीक इस ग़ैर-इस्लामी हुक्म में मस्लहत यह थी कि आमदनी मारी न जाए और सरकारी ख़ज़ाने में कमी वाक़ेअ न हो।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) के फ़रमान पर अमल हुआ तो लोग हज़ारों की तादाद में मुसलमान होने लगे और इलाक़े के इलाक़े इस्लाम की पनाह में आ गए। अकेले ख़ुरासान के गवर्नर जर्राह बिन अब्दुल्लाह हुक्मी के हाथ पर चार हज़ार ज़िम्मी मुसलमान हुए। इस्माईल बिन अब्दुल्लाह बिन अबिल मुहाजिर पश्चिमी इलाक़ों के गवर्नर थे। उनकी तब्लीग़ से सारे पश्चिम

में इस्लाम फैल गया।

इससे शुरू में जिज़्या की आमदनी ज़रूर कम हुई और कुछ गवर्नरों ने लिखा कि– "अमीरुल मोमिनीन ख़ज़ाना ख़ाली हो रहा है।"

अमीरुल मोमिनीन ने जवाब में लिखा–

"मुहम्मद (सल्ल.) हादी व रहनुमा बनाकर भेजे गए थे, जिज़्या वुसूल करनेवाले नहीं बनाकर भेजे गए थे।"

लेकिन यह कमी भी ज़्यादा देर क़ायम न रही और जाइज़ तरीक़ों से टैक्सों में इतनी ज़बर्दस्त बढ़ोत्तरी हुई कि आमदनी पहले दौर से भी बढ़ गई। इस तरह इराक़ की आमदनी हज्जाज के ज़ुल्म के दौर से भी बढ़ गई।

उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) को मालूम हुआ तो फ़रमाया, "ख़ुदा हज्जाज पर लानत करे, उसको न दीन का सलीक़ा था, न दुनिया का। उसने अपने ज़ालिमाना तरीक़ों से इराक़ से 2 करोड़ 80 लाख दिरहम वुसूल किए, मगर मेरे दौर में 12 करोड़ 40 लाख दिरहम वुसूल हुए।"

ज़िम्मेदारी का एहसास

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा बनने से पहले बड़े ऐश की ज़िन्दगी गुज़ारा करते थे, कपड़ों का शौक़ व ज़ौक़ इतना था और मिज़ाज में नफ़ासत का भी यह आलम था कि जब उनके कपड़ों पर एक बार दूसरों की नज़र पड़ जाती तो उसे पुराना समझने लगते थे। ख़ुशबू के लिए अंबर व सफ़ूफ़ दाढ़ी पर छिड़कते थे, हर वक़्त इत्र में बसे रहते थे। जब मदीना के गर्वनर होकर रवाना हुए, तो तीस ऊँटों पर उनका निजी सामान लदा हुआ था।

लेकिन जब उनके कंधों पर ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी का बोझ आ पड़ा तो एक दम बिल्कुल ही बदल गए। अपने पहले के ख़लीफ़ा सुलैमान बिन अब्दुल मलिक के कफ़न-दफ़न से फ़ारिग़ होने के बाद मामूल के मुताबिक़ उनके सामने शाही सवारियाँ पेश की गईं। पूछा–

"ये क्या हैं?"

"ये शाही सवारियाँ हैं।" नौकरों ने अर्ज़ किया।

"मेरे लिए मेरा ख़च्चर काफ़ी है।" ख़लीफ़ा ने कहा और सब-सवारियाँ वापस कर दीं और कुछ दिनों के बाद शाही अस्तबल के तमाम जानवरों को बेचकर उनकी क़ीमत बैतुलमाल में दाख़िल कर दी। घर आए तो चेहरे से परेशानी की झलक दिखाई पड़ रही थी। लौंडी ने पूछा–

"अमीरुल मोमिनीन! आप शायद कुछ फ़िक्रमंद हैं?"

उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने जवाब दिया–

"इससे ज़्याद फ़िक्र की क्या बात होगी कि पूरब और पश्चिम में उम्मते मुहम्मदिया का कोई आदमी ऐसा नहीं जिसका हक़ मुझपर न हो और माँग और ख़बर के बिना उसका अदा करना मुझपर ज़रूरी न हो।"

एक दिन उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) अपने घर में रो-रोकर दुआएँ कर रहे थे। रोते-रोते आँख लग जाती, जब खुलती तो फिर यही अमल शुरू हो जाता। उनकी बीवी फ़ातिमा ने जो एक मशहूर ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक की बेटी थीं और शौहर के बदलने के साथ ही बदल गईं थीं, इस हाल में देखकर पूछा–

"आज आप इस हालत में क्यों हैं?"

"बीवी! तुम्हें इससे क्या मतलब?" शौहर ने टालने के लिए कहा।

"मैं भी उससे नसीहत हासिल करना चाहती हूँ।" बीवी ने कहा।

उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.), जिनका रोवाँ-रोवाँ ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारियों के एहसास से भरा हुआ था, बोले–

> "मैं अपने बारे में ग़ौर करता हूँ तो महसूस करता हूँ कि इस उम्मत के छोटे-बड़े और काले-सफ़ेद तमाम मामलों का ज़िम्मेदार हूँ, इसलिए जब मैं बेकस, ग़रीब, मुहताज, फ़क़ीर, क़ैदी और इसी तरह के दूसरे आदमियों को याद करता हूँ जो सारे राज्य में फैले हुए हैं और जिनकी

ज़िम्मेदारी मुझपर है और यह सोचता हूँ कि ख़ुदा उनके बारे में मुझसे सवाल करेगा और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) उनके बारे में मुझपर हश्र के मैदान की अदालत में दावा करेंगे, फिर मैं उस वक़्त क्या जवाब दूँगा? अगर ख़ुदा के सामने कोई उज़्र पेश न कर सका तो मेरा अंजाम क्या होगा। मैं सोचता हूँ और मेरी नींद उड़ जाती है, मेरे आँसू बहने लगते हैं और मेरा दिल डर से काँपने लगता है।''

पद और पदवी से बचना

पद और पदवी की ख़ाहिश से एक मोमिन का दिल सरासर पाक होता है। शासन और सत्ता उसके नज़दीक एक अमानती बोझ है, जिसकी जवाबदेही बहुत सख़्त है। लेकिन जब जान जोखिम का मामला हो, जब कोई अहम ख़िदमत को अंजाम देना ही नज़रों के सामने हो, उस वक़्त एक मर्दे-मुजाहिद इस ख़िदमत को अंजाम देने के सिलसिले का पद स्वीकार करने की ख़ाहिश कर सकता है, इसलिए कि वहाँ अस्ल चीज़ पद-पदवी नहीं होती, बल्कि हक़ की वह ख़िदमत होती है जो उस पद के ज़रिये से ही अंजाम दी जा सकती है।

ग़ज़्व-ए-ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर मुसलमानों को फ़तह पाने में बड़ी दुशवारी हो रही थी। ख़ैबर का यहूदी सरदार मरहब एक बड़ा तजुर्बेकार योद्धा था और क़िला बहुत मज़बूत था, इसलिए उसको फ़तह करना मुश्किल था। मुसलमान जिहाद के शौक़ में बढ़-बढ़कर हमला करते और पहाड़ की चट्टान से टकरानेवाले समुद्र की लहरों की तरह वापस हो जाते।

आख़िर में अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने एक झंडा अपने मुबारक हाथ से तैयार किया और फ़रमाया–

> ''कल हम यह झंडा उस आदमी को देंगे जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को दोस्त रखता है और अल्लाह उसके हाथ से फ़तह अता फरमाएगा।''

यह अहम काम और फिर उसके साथ यह ख़ुशख़बरी और जीत का पैग़ाम, ये ऐसी क़ीमती बातें थीं कि सहाबा (रज़ि.) में से हर आदमी का दिल

इस ख़ाहिश व तमन्ना से भर गया कि 'काश! वह ख़ुशक़िस्मत आदमी मैं होऊँ।'

अगले दिन इस कामयाबी की ख़ुशख़बरी दिलानेवाला झंडा हज़रत अली (रज़ि.) के हिस्से में आया। उनकी आँखें आई हुई थीं और वे लड़ाई के क़ाबिल भी नहीं थे, लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उनकी आई आँखों पर लुआबे-दहन लगाया और वे अल्लाह की क़ुदरत से ठीक हो गईं। हज़रत अली (रज़ि.) मैदान में निकले और सच में ख़ैबर का नाक़ाबिले फ़तह क़िला उनके हाथों इस तरह जीत लिया गया मानो वह कच्ची दीवारों का मकान था।

हज़रत उमर (रज़ि.) से एक आदमी ने पूछा–

"आपने अपनी ज़िन्दगी में कभी ओहदे की ख़ाहिश की थी?"

"ओहदे की ख़्वाहिश मेरे मन में कभी पैदा नहीं हुई, उस एक दिन के अलावा जब ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने जीत का झंडा उस आदमी को देने का एलान फ़रमाया था जो अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल.) को दोस्त रखता है और जिसके हाथ से जीत तय है।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने जवाब दिया।

नाफ़रमान और गुनहगार की रहनुमाई से बेज़ारी

इस्लाम में रहनुमाई के लिए वही लोग मुनासिब होते हैं जो इस्लाम के आगे अपने को डाल देनेवाले हों। जिन लोगों की ज़िन्दगियाँ इस्लाम की नाफ़रमानी पर आधारित हों, उनपर भरोसा करना इस्लामी समाज के लिए मुनासिब नहीं। जो आदमी ख़ुदा और रसूल का वफ़ादार नहीं, वह मुसलमानों के साथ कब वफ़ा करेगा।

हज़रत हुसैन (रज़ि.) की शाहादत के बाद अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) ने मक्का मुअज़्ज़मा में बनी उमैया के मुक़ाबले में ख़िलाफ़त का दावा किया। बनी सक़ीफ़ का एक आदमी मुख़्तार बिन उबैद सक़फ़ी उनके साथ हो गया, लेकिन जब उसके अपने मक़ासिद पूरे न हुए तो उनसे अलग होकर हज़रत इमाम हुसैन (रज़ि.) के ख़ूने मासूम का बदला लेने का एलान कर दिया

और हुसैन (रज़ि.) से मुहब्बत करनेवालों को अपनी तरफ़ बुलाने लगा। उसने इमाम ज़ैनुल आबिदीन की ख़िदमत में नज़राना भेजा और दरख़ास्त की कि मैं आपके बाप के क़ातिलों को सज़ा देने के लिए उठा हूँ, मेरी सरपरस्ती कीजिए।

इमाम ज़ैनुल आबिदीन उसके हालात को जानते थे। उसकी दरख़ास्त को ठुकरा दिया और मस्जिदे नबवी में आकर उसकी बदकारियों का परदा चाक किया और एलानिया उससे बेज़ारी करते हुए फ़रमाया–

> ''यह आदमी लोगों को धोखा देने के लिए अह्ले-बैत को आड़ बनाना चाहता है। हक़ीक़त में इसको अह्ले-बैत की मुहब्बत से दूर का वास्ता भी नहीं।''

जालिमों से बेज़ारी

हज़रत उरवह, हज़रत ज़ुबैर बिन अवाम (रज़ि.) के लड़के और हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के भाई थे। बनी उमैया का ज़माना था और तमाम लोग उनके ज़ुल्मों से तंग आ गए थे। हज़रत उरवह और हज़रत ज़ैनुल आबिदीन हर दिन इशा के बाद मस्जिदे नबवी के एक कोने में बैठते— एक दिन ज़ैनुल आबिदीन ने कहा :

''उरवह! बनी उमैया के ज़ुल्मों को रोकने की जब हममें ताब नहीं, तो उनके साथ रहना कहाँ तक मुनासिब है? उनके ज़ुल्मों के बदले में ख़ुदा उनपर एक न एक दिन अज़ाब नाज़िल करेगा।''

> ''अली! जो आदमी ज़ालिमों से अलग रहेगा और ख़ुदा उसकी बेज़ारी को जानता होगा तो उम्मीद है कि जब ज़ालिमों को वह किसी मुसीबत में डालेगा तो उनसे अलग रहनेवाला आदमी, चाहे वह थोड़ी ही दूरी पर हो, वह मुसीबत से बचा रहेगा।''

इस बात-चीत के बाद उरवह मदीना छोड़कर अक़ीक़ चले गए जो मदीना के क़रीब ही एक जगह है। लोगों ने वजह पूछी तो फ़रमाया :

> ''उनकी मस्जिदें खेल-तमाशे और फ़िज़ूल चीज़ों का बाज़ार है

और उनके रास्तों में बेहयाइयों की गर्म-बाज़ारी है। मैं डरता हूँ कि कहीं उनके साथ मैं भी ख़ुदा के अज़ाब की लपेट में न आ जाऊँ।"

ज़ुल्म में मदद करने से बचना

अबू जाफ़र मंसूर अब्बासी एक ताक़तवर ख़लीफ़ा था। उस दौर के ख़लीफ़ा अपनी हुकूमत को क़ायम रखने के लिए बेपनाह ज़ुल्म करते थे। उनका हाथ रोकनेवाले अगर थे तो सिर्फ़ वे हक़वाले जो दीने-हिदायत को संभाले हुए किताब व सुन्नत का दर्स देते थे। इन हक़-परस्त बन्दों ही का यह फ़ैज़ है कि दीने-हक़ अपनी अस्ल शक्ल में बचा चला आया और इस्लामी उसूलों ने लोगों के दिलों में जगह बना ली।

अबू जाफ़र मंसूर ने इमाम मालिक और अब्दुल्लाह बिन ताऊस को अपने यहाँ बुलवाया। दोनों बुज़ुर्ग जाकर बैठ गए, कुछ देर ख़ामोशी रही। आख़िर में मंसूर ने बातों का सिलसिला छेड़ने के लिए अब्दुल्लाह से कहा–

"अपने वालिद ताऊस बिन कैसान की कोई हदीस सुनाइए।"

हज़रत अब्दुल्लाह ने कहा– "क़ियामत के दिन सबसे ज़्यादा अज़ाब उस आदमी को होगा जो ख़ुदा की हुकूमत में शिर्क करेगा अर्थात सत्ता में आकर ज़ुल्म करेगा।"

मंसूर ने यह सच्चा कथन सुना तो बात समझ गया और ज़हर के घूँट पीकर रह गया।

इमाम मालिक (रह.) कहते हैं कि मैं डरा कि अब मंसूर के अज़ाब का कोड़ा अब्दुल्लाह पर बरसेगा लेकिन ख़ैर हुई कि मंसूर ग़ुस्सा पी गया। थोड़ी देर के बाद मंसूर ने तीन बार अब्दुल्लाह से कहा कि 'दवात उठाकर मुझे दीजिए।'

मगर उन्होंने इसे पूरा न किया, आख़िर में मंसूर ने कहा–

"अब्दुल्लाह! दवात क्यों नहीं उठाकर देते?"

"इसलिए कि अगर तुम इससे कोई ज़ालिमाना हुक्म लिखोगे तो इसमें

मेरी भी शिर्कत हो जाएगी।" अब्दुल्लाह ने बरजस्ता जवाब दिया।

मंसूर ने दोनों को अपने यहाँ से उठा दिया। अब्दुल्लाह ने बाहर निकल कर कहा– "हम भी तो यही चाहते थे।"

एक सच्चा मुसलमान किसी ऐसे काम में अपनी शिर्कत पसन्द नहीं करता, जो ख़ुदा को नापसन्द हो।

सरकारी ख़र्चों में कम-से-कम ख़र्च

(1)

हुकूमत एक अमानत है और मुसलमानों का अमीर और हाकिम मुसलमानों का अमीन है, उसकी ज़िम्मेदारी है कि वह मुसलमानों के माल की पूरी-पूरी हिफ़ाज़त करे और एक पाई भी बर्बाद न होने दे और न एक पाई को फ़िज़ूल ख़र्च करे।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने बैतुलमाल की हिफ़ाज़त का बड़ा सख़्त इन्तिज़ाम किया था। एक बार उनको ख़बर मिली कि यमन के बैतुलमाल से एक दीनार गुम हो गया है। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने वहाँ के ख़ज़ाने के अफ़सर को लिखा कि "मैं तुम्हें बद-दयानती का इलज़ाम तो नहीं देता, मगर तुम बेपरवाई के ज़रूर अपराधी हो। मैं मुसलमानों की ओर से उनके माल का दावेदार हूँ इसलिए तुमपर फ़र्ज़ है कि शरई क़सम खाओ।"

(2)

अबू बक्र बिन हज़्म ने सुलैमान बिन अब्दुल मलिक के आख़िरी दौर में काग़ज़, क़लम, दवात और रौशनी के दफ़्तरी ख़र्चों में कुछ बढ़ाने के लिए इजाज़त चाही थी। अभी मंज़ूरी नहीं हुई थी कि उनका इंतिक़ाल हो गया और उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा बन गए।

जब अबू बक्र बिन हज़्म की दरख़ास्त उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) के सामने पेश हुई तो राजधानी से यह सख़्त जवाब गया–

"अबू बक्र! याद करो वह दिन जब तुम अंधेरी रात में रौशनी के बग़ैर कीचड़ में अपने घर से मस्जिदे-नबवी जाते थे। आज तुम्हारी हालत इससे कहीं बेहतर है। क़लम बारीक कर लो और लाइनें क़रीब-क़रीब लिखा करो, अपनी ज़रूरतों में से कम-से-कम ख़र्च करो। मैं मुसलमानों के ख़ज़ाने से ऐसी रक़म ख़र्च करना पसन्द नहीं करता जिससे उनको कोई फ़ायदा न पहुँचे।"

सुब्हानल्लाह! सरकारी ख़ज़ाने के बारे में कितना पाक-साफ़ उसूल बयान फ़रमाया।

अच्छा इन्तिज़ाम

हज़रत अह्नफ़ बिन क़ैस की अगुवाई में बसरा वालों का एक वफ़्द हाज़िर हुआ और उसने अमीरुल मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िदमत में यह दरख़ास्त पेश की–

"अमीरुल मोमिनीन! हम एक बंजर ज़मीन पर आबाद हैं। उसके पूरब में खारा समुद्र है और पश्चिम में बिन घास-पानी का मैदान। हमारे पास न मवेशी हैं न खेत, और न क़रीब में पानी ही है। दो कोस से पानी लाना पड़ता है, जिसे औरतें और बूढ़े लोग लाते हैं। औरतें पानी भरने जाती हैं तो बच्चों को बकरी की तरह घर में बाँधकर जाती हैं, ताकि वे घर से बाहर न निकलें और दरिन्दों से महफ़ूज़ रहें। क्या आप हमारी इस मुश्किल को हल न फ़रमाएँगे?"

अमीरुल मोमिनीन ने उसी वक़्त हुक्म दिया कि बसरा के बच्चों के वज़ीफ़े मुक़र्रर कर दिए जाएँ और हज़रत अबू मूसा अशअरी, जो बसरा के हाकिम थे, उनको लिखकर भेजा कि बसरा के लिए नहर खुदवा दें।

चुनांचे वह वफ़्द ख़ुशी-ख़ुशी और कामयाब वापस हुआ और इस तरह बस्ती के लोगों की मुश्किलें दूर हो गईं।

जनता की देख-भाल

हज़रत उमर (रज़ि.) हज के लिए जा रहे थे कि रास्ते में एक बूढ़ा आदमी मिला। उसने क़ाफ़िले को रोककर पूछा–

"तुममें अल्लाह के रसूल हैं?"

"नहीं, उनकी तो वफ़ात हो चुकी।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने जवाब दिया।

इसपर बूढ़ा बेइख़तियार रोने लगा। फिर पूछा–

"अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के बाद कौन ख़लीफ़ा हुआ?"

"हज़रत अबू बक्र (रज़ि.)," हज़रत उमर (रज़ि.) ने बताया।

"वह तुममें हैं?" बूढ़े ने पूछा।

"नहीं उनका भी इंतिक़ाल हो गया।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने जवाब दिया।

"उनके बाद कौन ख़लीफ़ा हुआ?" बूढ़े ने रोते हुए कहा।

"उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि.)।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने जवाब दिया।

"वह तुममें हैं?" बूढ़े ने कहा।

"मैं उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि.) हूँ।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने बताया।

"तो मेरी फ़रियादरसी कीजिए, मुझे कोई ऐसा आदमी नहीं मिलता जो मेरी ज़रूरतों में मेरी मदद करे।" बूढ़े ने कहा।

"तुम कौन हो? मैं तुम्हारी फ़रियादरसी करुँगा, अल्लाह ने चाहा तो।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने फ़रमाया।

"मेरा नाम अबू अक़ील है। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने मुझे इस्लाम की दावत दी। मैं आप (सल्ल.) पर ईमान लाया। आप (सल्ल.) ने मुझे

अपना बचा हुआ सत्तू पिलाया और मैं अब तक भूख और प्यास में उसकी लज़्ज़त और सैराबी को पूरी तरह महसूस करता हूँ। फिर मैंने बकरियों का एक रेवड़ लिया और उनको अब तक चराता रहा, नमाज़ पढ़ता हूँ और रोज़ा रखता हूँ। मगर इस साल बदक़िस्मती ने एक बकरी के सिवा, जिसका हम लोग दूध पीते थे, कुछ न छोड़ा और उसको भी भेड़िया उठा ले गया। अब आप मेरी मदद कीजिए।'' बूढ़े ने अपने हालात तफ़सील से ब्यान करके हज़रत उमर (रज़ि.) से अर्ज़ किया।

''थोड़ी दूरी पर चश्मा है, तुम हमसे वहाँ मिलो।'' हज़रत उमर (रज़ि.) ने बूढ़े को हिदायत की और क़ाफ़िला रवाना हो गया, और ऊँटों की घंटियों से फ़िज़ा गूँजने लगी।

मंज़िल पर पहुँचे तो हज़रत उमर (रज़ि.) एक ऊँटनी की महार पकड़े बूढ़े का इंतिज़ार करने लगे। लेकिन जब उसके आने में देर हुई और क़ाफ़िले के चलने का वक़्त आ गया तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने तालाब (चश्मे) के मालिक को बुलाकर फ़रमाया कि अबू अक़ील नाम का एक बूढ़ा आएगा, तुम उसको और उसके घरवालों को खिलाते-पिलाते रहना, यहाँ तक कि मैं हज से वापस आ जाऊँ।'' और क़ाफ़िला फिर आगे रवाना हो गया।

हज से फ़ारिग़ होकर वापस लौटे तो उस चश्मे पर पहुँचे और उसके मालिक से पूछा– ''अबू अक़ील (रज़ि.) कहाँ है जिसकी ख़िदमत करने के लिए मैं कह गया था?''

''अमीरुल मोमिनीन! जब वह आया तो उसे बुख़ार था, मैंने तीन दिन तक उसकी देख-भाल की, यहाँ तक कि वह अपने रब से जा मिला और मैंने उसको नहला-धुलाकर दफ़न कर दिया।'' उसने बताया।

''उसकी क़ब्र कहाँ है?'' अमीरुल मोमिनीन ने पूछा।

चश्मे के मालिक ने एक क़ब्र की निशानदेही की। हज़रत उमर (रज़ि.) वहाँ तशरीफ़ ले गए। हज़रत उमर (रज़ि.) पर उसके मरने का बड़ा असर था। वह रोते रहे, फिर उसके घरवालों को साथ ले गए और जब तक ज़िंदा रहे, उनकी परवरिश करते रहे।

जनता के हक़ों की दस्तावेज़

एक दिन हज़रत उमर (रज़ि.) मिंबर पर चढ़े और जनता और ख़लीफ़ा के हुक़ूक़ और फ़राइज़ के बारे में उन्होंने एक लम्बा-चौड़ा ख़ुत्बा दिया। फ़रमाया –

"लोगो! किसी आदमी को यह हक़ हासिल नहीं कि अल्लाह की नाफ़रमानी में बात मानने की माँग करे और न जाइज़ है कि ऐसे आदमी की बात मानी जाए जो नाफ़रमानी का हुक्म दे।"

इसके बाद सरकारी ख़ज़ाने में से ख़र्च करने के बारे में ख़लीफ़ा और हाकिम के फ़राइज़ को खोलकर बयान फ़रमाया–

'सिर्फ़ तीन शक्लें हैं जिनको अपनाने से यह माल सही माल हो सकता है–

एक यह कि हक़ के साथ वुसूल किया जाए,

दूसरे यह कि हक़ के मुताबिक़ ख़र्च किया जाए, और

तीसरे यह कि नाजाइज़ तरीक़े से उसे ख़र्च न किया जाए।

मेरी और तुम्हारी मिसाल यतीम और उसके वली की है। अगर ख़ुशहाल रहुँगा तो मुसलमानों के माल से कुछ नहीं लूँगा। ज़रूरतमंद रहूँगा तो ज़रूरत भर लूँगा।"

फिर हुकूमत चलाने का उसूल इन लफ़्ज़ों में बयान किया–

"मैं किसी को मौक़ा नहीं दूँगा कि वह किसी पर ज़ुल्म करे। अगर कोई ऐसा करेगा तो मैं ज़ालिम के चेहरे को अपने पाँवों से कुचल दूँगा, यहाँ तक कि वह सीधे रास्ते पर आ जाए।"

"मुझ पर तुम्हारे कुछ हक़ हैं। मैं उनको इसलिए बयान करता हूँ कि मुझसे उनकी माँग कर सको–

1. मेरा फ़र्ज़ है कि मैं टैक्स का माल जाइज़ तरीक़ों से वुसूल करूँ।

2. मेरा फ़र्ज़ है कि जो माल (ख़ज़ाना) मेरे हाथ में आ जाए उसको सही जगह ख़र्च करूँ।

3. मेरा फ़र्ज़ है कि तुम्हारे वज़ीफ़ों को बढ़ाऊँ, सीमाओं की हिफ़ाज़त करूँ। और,

4. मेरा फ़र्ज़ है कि तम्हें ख़तरे में न डालूँ।"

इसके बाद अपने हाकिमों को ख़िताब किया और फ़रमाया—

"अच्छी तरह सुन लो कि मैंने तुमको ज़ालिम व जाबिर बनाकर नहीं भेजा। मैंने तुमको हिदायत का रहनुमा बनाकर भेजा है, कि लोग तुम्हारे ज़रिये से सीधी राह पाएँ तो फ़ैयाज़ी के साथ मुसलमानों के हक़ दो, उनको न मारो कि वे ज़लील हो जाएँ, न उनकी तारीफ़ करो कि उन्हें तुम्हारे साथ लगाव पैदा हो और न उनके सामने अपने दरवाज़े बन्द रखो कि मज़बूत कमज़ोर को निगल जाए। अपने को उनपर तर्जीह देकर उनपर ज़ुल्म न करो, उनके साथ जिहालत और सख़्ती से पेश न आओ, उनके ज़रिये दुश्मनों से जिहाद करो, मगर अहले-ईमान पर उनकी ताक़त से ज़्यादा बोझ न डालो, अगर वे थक जाएँ तो रुक जाओ।"

फिर मुसलमानों से आम ख़िताब किया और फ़रमाया—

"मुसलमानो ! तुम गवाह रहो कि मैंने इन हाकिमों को सिर्फ़ इसलिए भेजा है कि लोगों को दीन की तालीम दें, उनमें ग़नीमत का माल बाँटें, उनमें इनसाफ़ करें और उनके मुक़द्दमों का फ़ैसला करें और अगर कोई मुश्किल मसला पैदा हो तो मेरे सामने पेश करें।"

जन-सेवा

(1)

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अपने मुहल्ले की एक मजबूर औरत की बकरियों का दूध दुह दिया करते थे। जब ख़िलाफ़त के बोझ से उनके कंधे

बोझल हो गए तो उस औरत की लड़की को जो फ़िक्र सता रही थी वह यह थी कि अब उसकी बकरियाँ कौन दुहेगा।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने सुना तो कहला भेजा कि तुम्हारी बकरियाँ मैं दुहूँगा। ख़िलाफ़त मुझे लोगों की ख़िदमत से रोकेगी नहीं।

(2)

मदीना के आस-पास एक अंधी और बूढ़ी औरत रहती थी। हज़रत उमर (रज़ि.) सुबह-सवेरे जाकर उसके ज़रूरी काम कर दिया करते थे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने महसूस किया कि कोई आदमी उनसे पहले आकर उस बुढ़िया के काम कर जाता है। हज़रत उमर (रज़ि.) हैरान थे कि वह कौन आदमी हो सकता है। एक दिन वे यह मालूम करने के लिए वक़्त से ज़रा और पहले आए तो देखा कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), जो उस वक़्त ख़लीफ़ा थे, उस बुढ़िया का काम कर के झोपड़े से निकल रहे हैं। हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा–

> "मेरी जान क़ुरबान! ऐ रसूल (सल्ल.) के ख़लीफ़ा! आप ही हर दिन बाज़ी ले जाते हैं?'

हाकिमों की जाँच पड़ताल

(1)

हज़रत उमर (रज़ि.) का यह क़ायदा था कि जब किसी आदमी को हुकूमत के पद पर नियुक्त करते, तो उससे अह्द लेते कि तुर्की घोड़े पर सवार न होगा, छना हुआ आटा न खाएगा, बारीक कपड़े न पहनेगा, दरवाज़े पर दरबान न रखेगा और ज़रूरतमंदों के लिए हर वक़्त अपना दरवाज़ा खुला रखेगा।

इन शर्तों का मक़सद यह था कि हाकिमों के अन्दर न घमंड पैदा हो, न वे ऐशो-आराम के आदी बनें और न ही उनके और अवाम के बीच कोई रूकावट रहे।

एक दिन अमीरुल मोमिनीन कहीं जा रहे थे। रास्ते में आवाज़ आई– "ऐ उमर! क्या ये वादे जो तुम अपने हाकिमों से लेते हो, तुम्हें नजात दिला सकेंगे?"

हज़रत उमर (रज़ि.) रुक गए और कहनेवाले से पूछा– "तुम्हारा क्या मतलब है?"

"मैं यह बताना चाहता हूँ कि तुम्हारा हाकिम अयाज़ बिन ग़नम बारीक कपड़े पहनता है और दरवाज़े पर दरबान रखता है।" उस आदमी ने जवाब दिया।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने मुहम्मद बिन मुस्लिमा को, जो जाँच-पड़ताल के काम पर लगाए गए थे, हुक्म दिया कि अयाज़ बिन ग़नम को जिस हाल में पाओ, पकड़कर ले आओ।

मुहम्मद बिन मुस्लिमा गए तो देखा कि वाक़ई दरवाज़े पर दरबान मौजूद है। अन्दर दाख़िल हुए तो देखा कि जिस्म पर बारीक क़मीज़ है। यह देखकर कहा– "अभी अमीरुल मोमिनीन की ख़िदमत में चलो।"

"अच्छा ठहरो कि बदन पर क़बा डाल लूँ।" इलाक़े के गवर्नर ने अर्ज़ किया।

"नहीं, तुम्हें इसी हालत में चलना होगा।" अमीरुल मोमिनीन के नुमाइंदे ने जवाब दिया।

चुनांचे उसी हालत में वह अमीरुल मोमिनीन के सामने हाज़िर हुए।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने ऊन का एक कुरता, एक लाठी और बकरियों का रेवड़ मँगवाया और फ़रमाया, "यह क़मीज़ उतार दो और यह कुरता पहन लो। यह डंडा लो और बकरियाँ चराओ।"

"अमीरुल मोमिनीन! इससे तो मौत बेहतर है।" अयाज़ घबराकर बोले।

"घबराने की बात नहीं, तुम्हारे बाप का नाम ग़नम इसी लिए रखा गया

था कि वह बकरियाँ चराया क़रते थे।" अमीरुल मोमिनीन ने संजीदगी से जवाब दिया और हुकूमत के ज़िम्मेदार के अन्दर जो कमज़ोरियाँ पैदा हो गई थीं उसको इस तरह दूर कर दिया।

ख़िलाफ़ते-राशिदा में ख़ुदा के बंदों को हक़ीक़ी अम्न व इत्मीनान मिला ही इसलिए था कि हुकूमत के हाकिम अपना फ़र्ज़ पहचानते थे और अमीरुल मोमिनीन सख़्ती से उनके कामों की जाँच-पड़ताल करते और उनको बंदों का ख़ुदा बनने से बाज़ रखते थे।

हुकूमत का निज़ाम हाकिमों और आलिमों के ऊँचे अख़लाक़ पर चलता है। बद-अख़लाक़ अफ़सर बहुत जल्द हुकूमत को जनता की निगाहों से गिरा देते हैं। अगर वे ऐशपरस्त हों तो अपनी ऐयाशियों के लिए ज़ुल्म व फ़साद बरपा करते, लोगों का माल लूटते, उनकी आबरू ख़राब करते और रिश्वत ले-लेकर ख़ुदा के बंदों को सताते हैं। ख़िलाफ़ते-राशिदा में हक़ के निज़ाम की बुनियाद इस बात पर क़ायम थी कि ज़िम्मेदार ऊँचे अख़लाक़ के मालिक हों और उनके ख़्यालात तक पाकीज़ा हों। अगर किसी आदमी के बारे में थोड़ी-सी शिकायत की वजह भी पैदा होती तो हज़रत उमर (रज़ि.) गवर्नर तक को अलग कर देते।

(2)

हज़रत नेमान बिन अदी (रज़ि.) मीसान के गर्वनर बनाकर भेजे गए। बीवी से कहा कि साथ चलो, मगर उसने साथ जाने से इंकार कर दिया। मीसान पहुँचकर अपनी प्यारी बीवी को एक ख़त लिखा और जुदाई की बेताबी के लिए कुछ शेर उसमें लिखे—

"उस सुन्दरी को मेरी तरफ़ से कौन यह पैग़ाम पहुँचाएगा कि उसका शौहर मीसान में जाम व मीना से दिल बहला रहा है।"

"जब मैं चाहता हूँ तो बस्ती के देहाती मेरे लिए गीत गाते और सितार से दिल बहलाते हैं।"

"जब तू मेरी हमनशीं बने तो छोटे प्यालों से न पिला, बल्कि बड़े प्यालों

से पिला।''

''अगर अमीरुल मोमिनीन को मेरी इन दिलचस्पियों की इत्तिला मिले तो शायद वे इसको नापसन्द करें।''

अमीरुल मोमिनीन अपने गवर्नरों का सख़्ती से जायज़ा लेते थे। उनको इन अशआर (शेरों) की ख़बर हो गई और दरबारे ख़िलाफ़त से नोमान के नाम फ़रमान गया कि मैंने तुम्हारा आख़िरी शेर सुना, हक़ीक़त में मुझे इस तरह की दिलचस्पियाँ सख़्त नापसन्द हैं। इस ख़त को अपने हटाए जाने का परवाना समझो।

नोमान जब ओहदे से हटने के बाद वापस आए तो कहा –

''अमीरुल मोमिनीन! वह तो शायरी की बात थी। यूँ ही कुछ शेर क़लम की नोक पर आ गए थे, वरना मैं कहाँ और शराब व सितार कहाँ :''

अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया, ''तुम सही कहते हो, तुम्हारे बारे में मेरा भी ऐसा ही ख़याल है, फिर भी तुम ख़लीफ़ा के गवर्नर बनाए जाने लायक़ नहीं हो।''

(3)

हज़रत अली (रज़ि.) अपनी ख़िलाफ़त के दौर में अपने मामूल के मुताबिक़ हाथ में कोड़ा लिए बाज़ार में घूम रहे थे और लोगों को परहेज़गारी, सच्चाई, हुस्ने सुलूक और नाप-तौल पूरा करने की नसीहत कर रहे थे।

एक खजूर बेचनेवाले की दुकान के सामने से गुज़रे तो देखा कि एक लौंडी (दासी) रो रही है। इस्लामी सलतनत के अमीर रुक गए और पूछा–

''तुम क्यों रो रही हो?''

''इस दुकानदार से मैंने एक दिरहम की खजूरें ख़रीदी थीं। जब मैं लेकर घर पहुँची तो मेरे आक़ा ने कहा, ये खजूरें वापस कर आओ, ये ख़राब हैं। मगर दुकानदार वापस नहीं करता, अब मेरा आक़ा मुझपर नाराज़ होगा, इसलिए मैं रो रही हूँ।'' दासी ने अपनी दास्तान सुनाते हुए कहा।

"भाई! जब खजूर इसके मालिक को पसन्द नहीं तो खजूर ले लो और दाम वापस दे दो।" हज़रत अली (रज़ि.) ने सिफ़ारिश करते हुए फ़रमाया।

"जाइए, जाइए, जनाब! आपको इस मामले में बोलने का कोई हक़ नहीं।" दुकानदार ने जवाब दिया, जो नहीं जानता था कि वह किससे बात कर रहा है।

इसपर एक आदमी ने दुकानदार से कहा, "जानते हो तुम किससे बात कर रहे रहो? बेवक़ूफ़! ये अमीरुल मोमिनीन हैं।"

यह सुनकर दुकानदार घबरा गया और उसने खजूर वापस ले लीं और पैसे वापस कर दिए और अर्ज़ किया–

"अमीरुल मोमिनीन! मुझसे ख़ता हो गई, माफ़ कर दीजिए।"

"अगर तुम लोगों को उनका पूरा-पूरा हक़ देते रहो तो मुझसे ज़्यादा तुमसे कौन राज़ी हो सकता है।" हज़रत अली (रज़ि.) ने उसको तसल्ली देते हुए फ़रमाया और उसको बता दिया कि इस्लामी हुकूमत की नाराज़ी और रज़ामंदी का मेयार क्या है।

ख़िदमात का एतिराफ़

एक दिन हज़रत उमर (रज़ि.) बाज़ार से गुज़र रहे थे। एक नौजवान औरत ने उनका दामन पकड़कर रोक लिया और कहा–

'अमीरुल मोमिनीन! मेरे शौहर का इंतिक़ाल हो गया और उन्होंने छोटे-छोटे बच्चे छोड़े हैं, जो किसी काम-काज के क़ाबिल नहीं, और कोई खेत या मवेशी नहीं छोड़ा कि उनकी आमदनी से गुज़र-बसर हो सके। मैं बच्चों को छोड़कर कोई मेहनत-मज़दूरी भी नहीं कर सकती। मैं डरती हूँ कि उनको दरिंदे न खा जाएँ। अमीरुल मोमिनीन! मैं ख़ुफ़ाफ़ बिन ईमा अंसारी की लड़की हूँ, जो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के साथ हुदैबिया में मौजूद थे।"

हज़रत उमर (रज़ि.) ने उस औरत को वहीं ठहरने को कहा और ख़ुद तशरीफ़ ले गए। थोड़ी देर के बाद वापस आए, तो इस हाल में कि रूम व

फ़ारस को जीतनेवाले के हाथ में ऊँट की नकेल थी और ऊँट पर ग़ल्ला और कपड़ा लदा हुआ था।

"ऊँट की महार पकड़ो और इसे हाँककर ले जाओ," अमीरुल मोमिनीन ने उस औरत से फ़रमाया।

"अमीरुल मोमिनीन! आपने उसको बहुत ज़्यादा दे दिया।" एक आदमी ने हज़रत उमर (रज़ि.) से कहा।

"अरे कमबख़्त! उसके बाप और भाई दोनों ने मेरे सामने मुद्दतों एक क़िले का घेराव किया और उसको जीत कर साँस ली। जो कुछ मैंने उस औरत को दिया है, वह तो उस बेहतरीन ख़िदमत के बदले में कुछ भी नहीं।" अमीरुल मोमिनीन ने जवाब दिया।

इस्लामी हुकूमत अपने ग़ाज़ियों और शहीदों की ख़िदमात को भुलाती नहीं।

इस्लामी हुकूमत में ज़िम्मियों की हालत

(1)

सही इस्लामी हुकूमत क़ायम हो तो उसमें ग़ैर-मुस्लिम जनता की जान व माल और आबरू की वही क़ीमत होती है जो मुसलमानों की जान व माल और आबरू की होती है।

बनी उमैया की हुकूमत के दौर में ज़िम्मियों के हक़ बिल्कुल ख़त्म हो चुके थे और ज़िम्मियों का क्या सवाल, ख़ुद मुसलमान भी सत्ता में बैठे ख़ानदान के ग़ुलाम होकर रह गए थे, लेकिन जब हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) का मुबारक दौर आया और इस्लाम को कोठरियों से निकालकर पूरी उमवी सल्तनत की हर चीज़ पर इख़तियार मिला तो ज़िम्मियों को पूरा-पूरा अमन नसीब हुआ।

उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने ज़िम्मियों के ख़ून की क़ीमत मुसलमानों के ख़ून के बराबर क़रार दी।

एक बार हीरह के एक मुसलमान ने एक ज़िम्मी को क़त्ल कर दिया। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) को इसकी ख़बर मिली तो उन्होंने वहाँ के गवर्नर को लिखा कि क़ातिल को मक़्तूल के वारिसों के हवाले कर दो। वे चाहें क़त्ल करें, चाहे माफ़ कर दें।

गवर्नर ने हुक्म की तामील की और ज़िम्मियों ने उस मुसलमान को क़त्ल कर दिया।

(2)

जब हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने शाही ख़ानदान के लोगों से मुसलमानों की छीनी हुई ज़मीनें भी वापस लीं तो ज़िम्मियों की छीनी ज़मीनें भी वापस दिलाईं। इस सिलसिले में एक ज़िम्मी ने यह दावा दायर किया कि अब्बास बिन वलीद ने मेरी ज़मीन पर ग़ासिबाना क़ब्ज़ा कर लिया है।

"तुम इस ज़िम्मी के दावे का क्या जवाब देते हो?" इनसाफ़ व हक़ के आलमबरदार ख़लीफ़ा ने अब्बास से पूछा।

"मेरे बाप वलीद ने मुझे यह ज़मीन जागीर में दी थी।" अब्बास ने जवाब दिया।

ज़िम्मी इस्लामी न्याय को समझता था। उसने कहा– "अमीरुल मोमिनीन! मैं आपसे अल्लाह की किताब के मुताबिक़ फ़ैसला चाहता हूँ।"

इसपर इंसाफ़ व हक़-पसंद ख़लीफ़ा ने अब्बास से फ़रमाया–

"अब्बास! ख़ुदा की किताब के मुताबिक़ किसी ज़िम्मी की ज़मीन छीनकर किसी को जागीर में नहीं दी जा सकती।"

"यह ठीक है, लेकिन मेरे पास वलीद की सनद मौजूद है, आपको अपने से पहले के ख़लीफ़ा के फ़रमान को बदलने का क्या हक़ है? अब्बास ने दलील देते हुए कहा। ख़ुदा की किताब वलीद की सनद से ऊपर है। ज़मीन ज़िम्मी को वापस दी जाती है।" अल्लाह की किताब की पैरवी करनेवाले ख़लीफ़ा का जँचा-तुला जवाब था।

(3)

दमिश्क़ में एक गिरजा अर्से से एक मुसलमान ख़ानदान के क़ब्ज़े में चला आ रहा था।

जब उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए और ईसाइयों को मालूम हुआ कि अब इस राज्य में बनी उमैया की हुकूमत नहीं है, बल्कि इस्लामी हुकूमत क़ायम हो गई है तो उन्होंने अमीरुल मोमिनीन की ख़िदमत में गिरजा की वापसी का दावा दायर कर दिया।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने मुसलमानों को बुलाया और हक़ीक़त मालूम की। उन्होंने जवाब दिया –

"यह गिरज़ा एक अर्से से हमारे क़ब्ज़े में है।"

इंसाफ़-पसंद ख़लीफ़ा ने फ़रमाया, "लेकिन इस्लाम तुमको इजाज़त नहीं देता कि तुम ग़ैर-मुस्लिमों की इबादतगाहों पर क़ब्ज़ा करो। गिरजा ईसाइयों को वापस करो!" इस तरह एक पल में बरसों की बेइंसाफ़ी को इंसाफ़ से बदल दिया।

राय की आज़ादी

सबको मालूम है कि हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि.) को हज़रत उमर (रज़ि.) ने माज़ूल (निलंबित) कर दिया था। इसपर अहमद बिन हफ़्स मख़्ज़ूमी ने जो हज़रत ख़ालिद (रज़ि.) के चचेरे भाई थे, हज़रत अमीरुल मोमिनीन को बेझिझक टोक दिया और एतिराज़ करते हुए कहा–

> "ऐ उमर! तुमने इंसाफ़ नहीं किया, तुमने एक ऐसे ज़िम्मेदार को माज़ूल किया जिसको अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने मुक़र्रर फ़रमाया था। तुमने एक तलवार को म्यान में कर दिया जिसको अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने खींचा था, तुमने एक ऐसे झंडे को पस्त कर दिया जिसे नबी (सल्ल.) ने गाड़ा था। तुमने रिश्ते-नाते तोड़े और तुमने चचेरे भाई से हसद किया।"

एतिराज़ बहुत सख़्त था, लहज़ा बड़ा तीखा था और इलज़ाम बेहद संगीन और जिससे कहा गया वह बहुत क़दरवाला आदमी था। मगर हज़रत उमर (रज़ि.) ने क़तई तौर पर नागवारी नहीं महसूस की और जवाब दिया तो सिर्फ़ इतना कि–

"साहबज़ादे! कमसिनी और रिश्तेदारी की वजह से तुम्हें अपने चचेरे भाई की हिमायत में ग़ुस्सा आ गया।"

राय की यही आज़ादी और उसको सब्र के साथ बर्दाश्त करने की यही ख़ूबियाँ थीं जो मुसलमानों की तरक़्क़ी के सुबूत थे।

सेफ़्टी ऐक्ट जाइज़ नहीं

बनी उमैया की हुकूमत जिन हालात में क़ायम हुई थी और बनी उमैया के ख़लीफ़ा जिस अंदाज़ से हुकूमत कर रहे थे और जिस क़िस्म की ज़िन्दगी बसर कर रहे थे, उसका क़ुदरती नतीजा यह था कि लोग उनके मुख़ालिफ़ हों और वे लोगों से ख़ौफ़-ज़दा रहें। नापसन्दीदा और ख़ौफ़-ज़दा होने की वजह से बनी उमैया अपनी हुकूमत को क़ायम रखने के लिए बात-बात पर कड़ी सज़ाएँ देते थे और सिर्फ़ बदगुमानी पर सज़ाओं के देने का सिलसिला क़ायम था।

यह हालत न सिर्फ़ राजनीतिक मामलों में थी, बल्कि आम इन्तिज़ामी मामलों में भी थी। मूसल में चोरी और नक़ब-ज़नी की वारदातें अकसर होती रहती थीं। इस ख़राबी को दूर करने के लिए प्रशासन को ठीक करने के बजाय वहाँ के गवर्नर यह्या ग़स्सानी ने अमीरुल मोमिनीन के सामने यह तजवीज़ पेश की कि लोगों को शक में गिरफ़्तार कर लेने और सज़ा देने की इजाज़त दी जाए, लेकिन चूँकि अब ख़िलाफ़त के तख़्त पर एक जाबिर उमवी खलीफ़ा नहीं था, बल्कि इस्लाम का पैरो और हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ जैसा ख़लीफ़-ए- राशिद था। उन्होंने जवाब में हुक्म दिया–

"सिर्फ़ शरई सुबूत पर पकड़ करो। अगर न्याय और इंसाफ़ लोगों में सुधार नहीं ला सकता तो ख़ुदा उनमें सुधार न लाएगा।"

क़ौमी तास्सुब से बचने की ताकीद

एक ईमानवाले की ज़िन्दगी में क़ौम, नस्ल और क़बीला कोई अहमियत नहीं रखता और न ग़ुरूर व घमण्ड के लिए इसमें कोई गुंजाइश है। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की ख़िलाफ़त के दौर में एक फ़ौजी मुहिम सामने थी। इस ग़रज़ के लिए जरफ़ नामी जगह पर फ़ौजें जमा हुईं। अमीरुल मोमिनीन फ़ौजों का मुआयना करने के लिए गए।

एक जगह बनी फ़ुज़ारा पड़ाव डाले हुए थे। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) को देखकर वे अदब के तौर पर खड़े हो गए। आपने उनको दुआ दी और मरहबा कहा। उनके सरदारों ने कहा, "ऐ अमीरुल मोमिनीन! हम घोड़ों पर ख़ूब चढ़ते हैं, इसलिए घोड़े भी साथ लाए हैं। बड़ा झंडा हमारे साथ कर दीजिए।"

"ख़ुदा तुम्हारी हिक्मत और तुम्हारे इरादों में बरकत दे, मगर बड़ा झंडा तुम्हें नहीं मिल सकता, क्योंकि वह बनू अब्स को दिया जा चुका है।" रसूल (सल्ल.) के ख़लीफ़ा ने फ़रमाया।

यह सुनकर एक फ़ुज़ारी को जोश आ गया और उसने कहा–

"हम बनी फ़ुज़ारा बनू अब्स से अच्छे हैं; झंडा हमें मिलना चाहिए।"

"ख़ामोश रहो, तुमसे हर अब्सी अच्छा है।" अबू बक्र (रज़ि.) ने डाँटते हुए फ़रमाया।

बनू अब्स ने सुना तो वह भी क़ौमी तास्सुब का शिकार होकर कुछ कहना चाहते थे। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने उनको भी मलामत करके चुप कर दिया और क़ौमी तास्सुब और नस्ली घमंड में पड़ने से रोक दिया।

मुसलमान के क़त्ल से बचना

(1)

हज़रत सालिम बिन अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) को हज्जाज ने एक

ऐसे आदमी को क़त्ल करने का हुक्म दिया जो उसमान (रज़ि.) के क़ातिलों की मदद करनेवालों में से था। हज़रत सालिम तलवार लेकर उस आदमी की तरफ़ बढ़े और पास जाकर पूछा– "तुम मुसलमान हो?"

उसने कहा–

"हाँ, मैं मुसलमान हूँ, मगर आपको जो हुक्म दिया गया है उसे पूरा कीजिए।"

"तुमने आज सुबह की नमाज़ पढ़ी है?" सालिम पूछा।

"हाँ, पढ़ी है," मुजरिम ने बताया।

सालिम ने तलवार फेंक दी और हज्जाज से कहा, "यह आदमी मुसलमान है। इसने आज सुबह तक नमाज़ पढ़ी है और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का इर्शाद है कि जिस आदमी ने सुबह की नमाज़ पढ़ ली, वह ख़ुदा की अमान में आ गया।"

"हम इसको सुबह की नमाज़ की वजह से तो क़त्ल नहीं करते, बल्कि इसलिए कि उसमान (रज़ि.) के क़ातिलों की मदद करनेवालों में से था"- हज्जाज ने कहा।

"इसके लिए और लोग मौजूद हैं जो उसमान (रज़ि.) के ख़ून का बदला लेने के लिए हमसे ज़्यादा हक़दार हैं।" सालिम ने कहा।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) ने सुना तो कहा, "सालिम ने समझदारी का काम किया।"

(इस वाक़िआ के सिलसिले में यह शक न हो कि वह आदमी क़त्ल का मुजरिम था। अगर वह क़ातिल होता तो उसका ख़ून इस्लाम की रूह से हुकूमत पर हलाल था, मगर हालत यह थी कि उसपर उसमान के क़त्ल करनेवालों में शरीक होने का शक था।)

(2)

हज़रत अली (रज़ि.) और हज़रत मुआविया (रज़ि.) के दर्मियान

सिफ़्फ़ीन की ज़ोरदार लड़ाई हुई थी। अक्सर सहाबा व ताबईन ने उसमें हिस्सा लिया। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे जो इस गृह-युद्ध में अपने हाथ सानने के लिए तैयार न हुए। उनमें एक अबुल आलिया रियाज़ी भी थे, जो एक मशहूर ताबई हैं।

उस ज़माने में वे नौजवान थे और हक़ के लिए लड़ने को बहुत महबूब रखते थे। चुनांचे लड़ाई की पूरी तैयारी करके लड़ाई के मैदान में पहुँचे। दोनों तरफ़ ऐसी ज़बरदस्त फ़ौजें थीं कि उनके सिरे नज़र नहीं आते थे। जहाँ तक नज़र जा रही थी फ़ौजें ही फ़ौजें फैली हुई थीं।

अबुल आलिया रियज़ी लड़ाई के मैदान में पहुँचे तो उन्होंने अजीब मंज़र देखा। जब एक फ़रीक़ अल्लाहु अकबर का नारा लगाता और कलिम-ए-तौहीद का विर्द करता तो दूसरा भी तकबीर व तह्लील से उसका जवाब देता। अबुल आलिया सोचने लगे कि या अल्लाह! मैं किस फ़रीक़ को मोमिन और किस फ़रीक़ को काफ़िर समझूँ, किसका साथ दूँ और किससे लडूँ। मैं लड़ने के लिए मजबूर तो नहीं हूँ। यह सोचा और शाम होने से पहले-पहले लौट गए।

(3)

हज़रत अली (रज़ि.) और हज़रत मुआविया (रज़ि.) के दर्मियान जिस ज़माने में जंग हो रही थी, मसरूक़ बिन अजदअ, जो यमन के मशहूर घुड़सवारों में से थे, दोनों फ़रीक़ों में से किसी के साथ नहीं थे। क़ादसिया की मशहूर जंग में वह और उनके तीन भाई शरीक थे। तीनों बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गए थे। मसरूक़ का हाथ तलवार चलाते-चलाते शल हो गया था और सिर में गहरा ज़ख़्म आया था, जिसका निशान बाक़ी रह गया और उसे वह अपनी बहादुरी और अल्लाह के रास्ते के जिहाद की यादगार के तौर पर बहुत महबूब रखते थे। लेकिन जिहाद के मैदान के धनी होने के बावजूद जब ख़ाना-जंगी (गृह-युद्ध) का सिलसिला शुरू हुआ तो वे उससे बचने के लिए कूफ़ा छोड़कर क़ज़वीन चले गए।

वह हज़रत अली (रज़ि.) को हक़ पर समझते थे, इसलिए उनके अलगाव पर ताज्जुब करते हुए एक आदमी ने पूछा–

"आपने हज़रत अली (रज़ि.) का साथ क्यों नहीं दिया?"

मसरूक़ ने कहा, "मैं तुमसे ख़ुदा का वास्ता देकर एक सवाल करता हूँ।"

पूछनेवाले ने कहा, "फरमाइए।"

मसरूक़ ने कहा, "मान लो, जब हम लोग एक-दूसरे के आमने-सामने मुक़ाबले के लिए खड़े हों और दोनों फ़रीक़ तलवारें सौंतकर एक-दूसरे को क़त्ल कर रहे हों तो यकायक आसमान में एक दरवाज़ा खुले और उसमें से एक फ़रिश्ता उतरकर दोनों सफ़ों के बीच आकर एलान करे–

'ऐ ईमानवालो। एक-दूसरे का माल बातिल तरीक़े से न खाओ, बल्कि वह माल खाओ जो आपस की रज़ामंदी से तिजारत के ज़रिये हासिल किया गया हो और आपस में एक-दूसरे को क़त्ल न करो।'

तो बताओ दोनों फ़रीक़ यह एलान सुनकर क्या करेंगे?

"दोनों फ़रीक़ लड़ाई से हाथ रोक लेंगे।" पूछनेवाले ने जवाब दिया।

"तो ख़ुदा की क़सम! तुमको मालुम होना चाहिए कि ख़ुदा आसमान का दरवाज़ा खोल चुका और उसमें से एक फ़रिश्ता उतरकर हमारे नबी मुहम्मद (सल्ल.) के ज़रिये यह हुक्म सुना चुका। यह हुक्म क़ुरआन में मौजूद है और इसको किसी दूसरे हुक्म ने मंसूख़ नहीं किया।"

सवाल करनेवाले का दिल मुत्मइन हो गया और उसको मालूम हो गया कि मसरूक़ क्यों लड़ाई से अलग रहे।

मुसलमान का एहतिराम

हज़रत अली (रज़ि.) अपने मामूल के मुताबिक़ ख़िलाफ़त के दिनों में छोटी आस्तीन और ऊँचे दामन का कुरता पहने और मामूली कपड़े का तहबंद बाँधे बाज़ार में जा रहे थे। अमीरुल-मोमिनीन को देखकर एक आदमी रुक गया और फिर एहतिराम के तौर पर उनके पीछे-पीछे हो लिया।

"मेरे बराबर चलो," हज़रत अली (रज़ि.) ने उससे कहा।

"अमीरुल मोमिनीन! मैं एहतिराम के तौर पर आपके पीछे चल रहा हूँ।" उस आदमी ने कहा।

"एहतिराम करने का यह तरीक़ा सही नहीं। इसमें मालिक के लिए फ़ित्ना और मोमिन के लिए ज़िल्लत है।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया और उस आदमी को अपने बराबर चलने पर मजबूर कर दिया।

सुलह-सफ़ाई

हज़रत अबू बक्र और हज़रत उमर (रज़ि.) में किसी मसले पर बातचीत हो रही थी। इत्तिफ़ाक़ से हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की ज़बान से कोई सख़्त कलिमा निकल गया। बाद में एहसास हुआ और हज़रत उमर (रज़ि.) से माफ़ी माँगी। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) को उनकी इस सख़्त बात से रंज पहुँचा था। उन्होंने माफ़ करने से इंकार कर दिया।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) परेशान हुए और अल्लाह के रसूल (सल्ल). की ख़िदमत में जाकर अर्ज़ किया कि उमर (रज़ि.) को मेरी एक बात से रंज पहुँचा है, उनसे माफ़ी दिला दीजिए।

अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने तसल्ली देने के लिए फ़रमाया– "ख़ुदा तुम्हारी मग़्फ़िरत फ़रमाए।"

सहाबा के नज़दीक प्यारे नबी (सल्ल.) की दुआएँ बहुत महबूब और इत्मीनान की वजह बनती थीं।

बाद में हज़रत उमर (रज़ि.) भी अपने इंकार पर शर्मिन्दा हुए और रसूलुल्लाह (सल्ल.) की ख़िदमत में पहुँचे। देखा कि मुबारक चेहरे पर ग़ुस्से के निशान ज़ाहिर हैं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने आजिज़ी के साथ अर्ज़ किया कि हुज़ूर! ग़लती मेरी थी। इस तरह दोनों दोस्तों के दिल का ग़ुबार जाता रहा।

मुसलमानों में सुलह कराना

मुसलमानों में सुलह कराना एक इस्लामी फ़र्ज़ है।

हज़रत उसमान (रज़ि.) की शहादत के बाद हज़रत अली (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो उस वक़्त जो इख़्तिलाफ़ उम्मत में पैदा हो गया था, उसने जमल की लड़ाई की शक्ल इख़्तियार कर ली। एक तरफ़ हज़रत अली (रज़ि.) थे और दूसरी तरफ़ हज़रत आइशा (रज़ि.), हज़रत तलहा और हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) थे।

हज़रत काब बिन मिस्वर, जिनको हज़रत उमर (रज़ि.) ने बसरा में क़ाज़ी मुक़र्रर किया था, इस ख़ाना-जंगी (गृह-युद्ध) को देखकर गोशानशीं हो गए और खाने-पीने का सामान लेने के लिए एक सूराख़ बना लिया।

लोगों ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से कहा कि अगर काब आपके साथ हो जाएँ तो पूरा क़बीला उज़्द आपके साथ हो जाएगा।

हज़रत आइशा (रज़ि.) काब (रज़ि.) के मकान पर गईं और उनसे बात करनी चाही, मगर उन्होंने कोई जवाब न दिया।

इसपर हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा– "काब! क्या मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ और तुमपर मेरा हक़ नहीं है?"

हज़रत काब (रज़ि.) ने कहा – "मैं हाज़िर हूँ। क्या इर्शाद है?"

"मैं चाहती हूँ कि तुम लोगों को समझा-बुझाकर सुलह-सफ़ाई की कोशिश करो।" उम्मुल मोमिनीन ने फ़रमाया।

हज़रत काब (रज़ि.) ने कहा, "सर आँखों पर।"

और क़ुरआन लेकर लोगों को समझाने के लिए निकले।

जब दोनों फ़ौजें मुक़ाबले में आ लगीं तो काब सफ़ों के दर्मियान घुस गए और क़ुरआन खोलकर लोगों को समझाने और किताबे इलाही की तरफ़ बुलाने लगे, लेकिन हालात बेहद ख़राब हो चुके थे। लड़ाई शुरू हो गई और काब सुलह की कोशिश में शहीद हो गए।

बेलाग इंसाफ़

(1)

क़ाजी शुरैह बिन हारिस हज़रत उमर (रज़ि.) के ज़माने के क़ाज़ी थे। बेलाग इंसाफ़ करना उनकी आदत थी। इस मामले में वह न हज़रत उमर (रज़ि.) की परवाह करते थे और न अपने किसी क़रीबी और अज़ीज़ की। काज़ी बनाए जाने से पहले भी वे बेलाग फ़ैसला देने में मशहूर थे।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने एक आदमी से इस शर्त के साथ एक घोड़ा ख़रीदा कि 'अगर घोड़ा इम्तिहान में पूरा उतरा तो ख़रीदूँगा।'

बदक़िस्मती से इम्तिहान में घोड़ा दाग़ी हो गया और हज़रत उमर (रज़ि.) ने वापस करना चाहा, इसपर झगड़ा हुआ। हज़रत शुरैह बिन हारिस को सालिस (पंच) बनाया गया। उन्होंने फ़ैसला कर दिया कि–

"अमीरुल मोमिन! जो घोड़ा आपने ख़रीदा है उसे ले लीजिए या जिस हालत में ख़रीदा था उसी हालत में वापस कीजिए।"

हज़रत उमर (रज़ि.) ने यह फ़ैसला सुना तो उनके बे-लाग इंसाफ़ और फ़ैसला करने की सही ताक़त को देखकर उनको कूफ़ा का क़ाज़ी मुक़र्रर कर दिया।

(2)

क़ाज़ी शुरैह के लड़के ने एक मुलज़िम की ज़मानत की। मुलज़िम भाग गया। उन्होंने अपने लड़के को उसके बदले में क़ैद कर दिया।

एक बार उनके ख़ादिम ने एक व्यक्ति को कोड़ों से पीटा। काज़ी शुरैह ने उस आदमी से अपने ख़ादिम को कोड़े लगवाए।

(3)

क़ाज़ी शुरैह बिन हारिस के ख़ानदान के एक आदमी ने किसी पर कुछ ज़्यादती की थी। उनके सामने मुक़द्दमा पेश हुआ। उन्होंने अपने ख़ानदान के

आदमी को मुजरिम पाकर सज़ा के तौर पर एक खम्बे से बँधवा दिया। जब फ़ैसला करके उठे तो उनके रिश्तेदार ने कुछ कहना चाहा। क़ाज़ी साहब ने फ़रमाया–

"मुझसे कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं। मैंने तुम्हें क़ैद नहीं किया, बल्कि तुम्हें हक़ ने क़ैद किया है।"

(4)

क़ाज़ी शुरैह बिन हारिस के एक लड़के और कुछ लोगों के बीच एक मामले में झगड़ा था। लड़के ने अपने बाप को वाक़िआत बताकर पुछा–

"अब्बा जान! मुक़द्दमे के ये वाक़िआत हैं। अगर मेरा हक़ निकलता हो और मुक़द्दमे में कामयाबी की उम्मीद हो तो मैं दावा कर दूँ, वरना ख़ामोश रहूँ।"

"तुम दावा कर दो।" बाप ने मुक़द्दमे के पहलुओं पर ग़ौर करने के बाद जवाब दिया।

लड़के ने दावा दायर कर दिया और मुक़द्दमा क़ाज़ी साहब की अदालत में पेश हुआ। अपने लड़के और दूसरे फ़रीक़ के बयान को सुनने के बाद आपने फ़ैसला दिया और वह फ़ैसला उनके अपने लड़के के ख़िलाफ़ था।

"अब्बा जान! आपने मुझपर बड़ा ज़ुल्म किया। मैंने दावा करने से पहले आपसे मश्विरा इसी ग़रज़ से किया था कि अगर कामयाबी की उम्मीद हो तो अदालत का दरवाज़ा खटखटाऊँ, वरना ख़ामोश रहूँ। आपने दावा दायर करने का मश्विरा दिया, फिर फ़ैसला मेरे ख़िलाफ़ कर दिया और इस तरह मुझे ख़ाहमख़ाह ज़लील किया।"

फ़र्ज़ पहचाननेवाले और बेलाग-इंसाफ़ करनेवाले बाप ने जवाब दिया–

"जाने पिदर! तुम मुझे ज़मीन के इन जैसे तमाम आदमियों से ज़्यादा

प्यारे हो, लेकिन अल्लाह तआला तुमसे भी ज़्यादा प्यारा है। जब तुमने मुझसे मश्विरा लिया था और मुक़द्दमे की शक्ल पेश की थी, मैं उस वक़्त समझ गया था कि तेरे मुख़ालिफ़ हक़दार हैं। अब अगर मैं तुमको बता देता कि हक़ उनका निकलता है, तो तुम उनसे सुलह कर लेते और उनका हक़ मारा जाता। मैंने हक़ को हक़दार तक पहुँचाने के लिए तुमको मश्विरा दिया और तुम्हें ख़ुश होना चाहिए कि तुम नाहक़ माल पर क़ब्ज़ा किए रहने से नजात पा गए।"

(5)

हज़रत अली (रज़ि.) की ज़िरह (कवच) कहीं गिर पड़ी। एक ज़िम्मी यहूदी ने उठा ली। हज़रत अली (रज़ि.) को मालूम हो गया। उन्होंने क़ाज़ी शुरैह की अदालत में दावा दायर कर दिया।

क़ाज़ी शुरैह ने यहूदी से पुछा, "अली कहते हैं कि यह ज़िरह जो तुम्हारे पास है उनकी है?"

"उनका दावा ग़लत है।" यहूदी ने जवाब दिया।

"मगर तुम्हारे पास इसका क्या सुबूत है कि ज़िरह तुम्हारी है।" क़ाज़ी साहब ने पुछा।

"सुबूत यह है कि ज़िरह मेरे क़ब्ज़े में है।" यहूदी ने बेझिझक जवाब दिया।

क़ाज़ी साहब हज़रत अली (रज़ि.) की तरफ़ मुतवज्जेह हुए और कहा–

"अमीरुल मोमिनीन! फ़रमाइए, आपके पास क्या सुबूत है कि यह ज़िरह आपकी है और यह गिर गई थी, कोई गवाही इस बारे में है?"

"मेरा लड़का हसन और मेरा ग़ुलाम क़ंबर इस बात के गवाह हैं कि यह ज़िरह मेरी है और कहीं गिर गई थी।" अमीरुल मोमिनीन ने कहा।

"हसन आपके साहबज़ादे हैं और क़ंबर आपका ग़ुलाम" क़ाज़ी ने कहा, "मैं बाप के हक़ में लड़के की गवाही और आक़ा के हक़ में ग़ुलाम की गवाही क़बूल नहीं कर सकता, कोई और गवाह लाइए।"

"आपने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का यह इर्शाद नहीं सुना कि हसन और हुसैन जन्नत के जवानों के सरदार हैं। क्या इनकी गवाही भी एतिबार के क़ाबिल नहीं?" अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया।

"सुना है, मगर मामला गवाही के उसूल का है। अगर शख़सियत की बिना पर फ़ैसला करना होता तो ख़ुद आपका दावा ही काफ़ी था।" क़ाज़ी ने कहा।

"बेहतर है, मैं ज़िरह के दावे से हट जाता हूँ।" अमीरुल मोमिनीन ने कहा।

ये सब देखकर यहूदी पुकार उठा –

"क़ाज़ी साहब! मैं एक सच्ची बात का इक़रार करता हूँ। आपने अमीरुल मोमिनीन के ख़िलाफ़ फ़ैसला दिया और उन्होंने बेझिझक उसे मान लिया। सच में आप लोगों का दीन 'इस्लाम' बिल्कुल सच्चा है और मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह के सच्चे रसूल हैं।"

यहूदी के इस्लाम क़बूल करने पर हज़रत अली (रज़ि.) को इतनी ख़ुशी हुई कि उन्होंने ज़िरह उसे दे दी और फ़रमाया–

"मैं यह ज़िरह अपनी तरफ़ से तुम्हारे इस्लाम क़बूल करने की याद में तुम्हें देता हूँ।"

'अल्लाहु अकबर!' वे भी क्या लोग थे!

इंसाफ़ आम करो

जराह बिन अब्दुल्लाह बिन हुकमी ख़ुरासान का गवर्नर था। ख़ुरासान के लोगों का तौर-तरीक़ा बहुत ख़राब था। गवर्नर ने हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) की ख़िदमत में वहाँ के हालात ब्यान किए और कहा –

"इन लोगों को कोड़े और तलवार के अलावा और कोई चीज़ ठीक नहीं कर सकती। अगर अमीरुल मोमिनीन मुनासिब समझें तो इजाज़त दे दें।"

अमीरुल मोमिनीन ने जवाब में लिखा–

"तुम्हारा यह लिखना बिल्कुल ग़लत है कि ख़ुरासानवालों को कोड़े और तलवार के सिवा कोई चीज़ ठीक नहीं कर सकती। इंसानों को न्याय और इंसाफ़ ही ठीक करता है, इसी को आम करो।"

यह था अमन का वह फ़ल्सफ़ा, जो इस्लाम ने दुनिया के सामने पेश किया था, लेकिन मुसलमानों ने बाद में ग़ैरों से एक दूसरा फ़ल्सफ़ा सीखा और उसे अपना लिया और फिर ख़ुद मुसलमानों के ख़ून से धरती को लाल कर दिया।

इंसाफ़ और बराबरी

(1)

जुमा का दिन था। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने मिंबर पर से एलान किया कि आज मैं सदक़े के ऊँट बाटूँगा। सब लोग आएँ, मगर इजाज़त लिए बिना हमारे पास कोई न आए।

यह सुनकर एक औरत ने अपने शौहर से कहा, "यह ऊँट की महार लो और रसूल (सल्ल.) के ख़लीफ़ा की ख़िदमत में जाओ, मुमकिन है हमें भी एक ऊँट मिल जाए।"

वह आदमी महार लिए हुए आया और इजाज़त लिए बग़ैर दरबारे-ख़िलाफ़त में चला गया।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने सज़ा के तौर पर उसी महार से उसे मारा। जब ऊँटों की तक़्सीम से छूटे तो फ़रमाया, "उस आदमी को बुलाओ जिसे महार से मारा था।"

वह डरता-डरता आया। ख़लीफ़ा ने फ़रमाया–

"मैंने तुम्हे इस महार से मारा था, तुम भी इस महार से अपना क़िसास (बदला) ले लो।"

हज़रत उमर (रज़ि.) पास में मौजूद थे, उन्होंने कहा–

"ख़लीफ़तुर्रसूल! यह रस्म क़ायम न कीजिए। आपने बेवजह तो नहीं मारा था, बल्कि हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी पर सज़ा दी थी।"

"यह सही है, मगर क़ियामत में अगर इसका हिसाब हुआ तो ख़ुदा को क्या जवाब दूँगा।" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा।

इंसाफ़ और बराबरी की यही रस्म थी जिसकी वजह से ख़िलाफ़त के दौर का हर आदमी अपनी ख़ुदी को बेदार और अपनी इज़्ज़त को महफ़ूज़ पाता था। क़ौमें उस वक़्त तक इज़्ज़त की हक़दार रहती हैं, जब तक उनका हर आदमी ख़ुद को इज़्ज़तदार समझता है। जब हुकूमत के ज़िम्मेदार अवाम को मार-पीटकर ज़लील कर देते हैं तो उनकी ख़ुदी मर जाती है और वे ग़ैर-क़ौमों का आसानी से शिकार हो जाते हैं।

(2)

हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िलाफ़त के ज़माने में हज हो रहा था। अल्लाह के नेक बन्दे बैतुल्लाह का तवाफ़ कर रहे थे।

'अल्लाहुम-लब्बैक ला शरी-क ल-क लब्बैक' की आवाज़ों से माहौल गूँज रहा था। शाह व फ़क़ीर जोश व अक़ीदत से बराबर अल्लाह के घर के गिर्द परवानों की तरह घूम रहे थे।

जबला बिन ऐहम ग़स्सानी, जो शाम के क़बीला ग़स्सान का बादशाह था और अब मुसलमान होकर हज को आया हुआ था, इस भीड़ में शामिल था। उसके पीछे एक बदवी मस्ती के साथ अल्लाह को याद करता हुआ जा रहा था। इत्तिफ़ाक़ से ग़स्सानी सरदार की इबा के लटके हुए दामन पर बदवी का पाँव पड़ गया। सरदार को ग़ुस्सा आ गया। उसने मुड़कर एक तमाँचा बदवी के मुँह पर रसीद किया जिससे उस ग़रीब की एक आँख बैठ गई।

मुक़द्दमा अमीरुल मोमिनीन की अदालत में पेश हुआ।

"जबला! क्या यह सही है कि तुमने इस बदवी को तमाँचा मारा?" अमीरुल मोमिनीन ने पुछा।

"हाँ अमीरुल मोमिनीन! इसने मेरे कपड़ों पर पाँव रख दिया था, इसलिए मैंने इसे गुस्ताख़ी की सज़ा दी।" जबला ने तनकर जवाब दिया।

"तो यह आदमी भी इसी तरह क़िसास में तुम्हारे मुँह पर तमाँचा मारेगा।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़ैसला सुनाया।

जबला हैरान रह गया। हैरत से बोला–

"अल्लाहु अकबर! क्या इस हक़ीर बदवी की आँख और मेरी आँख बराबर है?"

"बेशक, अल्लाह का बंदा होने में तुम दोनों बराबर हो और इस्लामी क़ानून की निगाह में एक जैसे हो और अल्लाह के दीन की निगाह में शाह व गदा सब बराबर हैं।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया।

"तो मुझे एक दिन की मोहलत दीजिए।" जबला ने तंग आकर कहा।

"बेहतर है, कल तक या तो इस बदवी को अपने क़िसास से हट जाने पर राज़ी कर लो या फिर कल तुम्हारी आँख इस बदवी की आँख के बदले में ले ली जाएगी।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़रमाया।

जबला दरबारे ख़िलाफ़त से निकला और यह कहकर फ़रार हो गया–

> "जिस देश में यह अंधेर है कि एक बादशाह और बदवी को क़ानून की नज़र में बराबर समझा जाता है, मैं उसमें नहीं रहूँगा।"

जबला भाग गया और उसने अपने घमंड के बदले में अपनी आख़िरत बर्बाद कर ली, लेकिन ख़िलाफ़ते इस्लामी का सिर ख़ुदा और बंदों की निगाह में बुलंद हो गया और इनसानियत का सिर क़ियामत तक के लिए उसके सामने झुक गया।

क़ानून की हुक्मरानी

हज़रत उमर (रज़ि.) ने ख़िलाफ़ते-राशिदा में न्याय और इंसाफ़ का जो दौर-दौरा क़ायम किया था, उसकी बुनियाद 'क़ानून की हुक्मरानी' पर थी,

जिसे आज के दौर में 'Rule of Law' कहते हैं और इसमें छोटे-बड़े और अफ़सर-ग़ैर-अफ़सर का कोई फ़र्क़ न था।

हज के मौक़े पर मामूल के मुताबिक़ तमाम सूबों (प्रांतों) के गवर्नर मौजूद थे। अमीरुल मोमिनीन ने एलान किया–

"अगर किसी आदमी को हुकूमत के ज़िम्मेदारों से कोई शिकायत हो तो पेश करे।"

इस एलान को सुनकर एक आदमी खड़ा हो गया और उसने कहा–

"अमीरुल मोमिनीन! आपके मिस्र के गवर्नर अम्र बिन आस नें मुझे सौ कोड़े बेवजह मारे हैं।"

"अम्र! क्या यह आदमी सच कहता है?" अमीरुल मोमिनीन ने हज़रत अम्र बिन आस (रज़ि.) से पूछा।

"जी हाँ अमीरुल मोमिनीन!" अम्र बिन आस (रज़ि.) ने जवाब दिया।

"क्या तुम भी क़िसास में सौ कोड़े मारना चाहते हो?" अमीरुल मोमिनीन ने मुद्दई से पूछा।

"बेशक," उसने अर्ज़ किया।

"अम्र! कोड़े खाने के लिए तैयार हो जाओ।" अमीरुल मोमिनीन ने इंसाफ़ से भरा फ़ैसला सुना दिया।

"अमीरुल मोमिनीन! यह बात गवर्नरों के लिए बोझ हो जाएगी और आगे के लिए नज़ीर बन जाएगी, तब हुकूमत क़ायम रखना मुश्किल हो जाएग।" अम्र बिन आस (रज़ि.) ने राजनीति और शासन का एक राज़ बताते हुए अर्ज़ किया।

"हुकूमत का नज़्म ज़ुल्म और सख़्ती पर नहीं, बल्कि न्याय और इंसाफ़ पर क़ायम होता है। जब ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल.) से क़िसास लिया गया तो तुम कौन होते हो?" अमीरुल मोमिनीन ने डाँटकर फ़रमाया।

"अगर मैं मुद्दई को राज़ी कर लूँ तो क़िसास से बच जाऊँगा?" अम्र बिन आस ने पूछा।

"हाँ, अगर यह आदमी तुम्हें माफ़ कर दे तो सज़ा से बच सकते हो।" अमीरुल मोमिनीन ने फ़ैसला देते हुए फ़रमाया।

अम्र बिन आस (रज़ि.) ने दो अशरफ़ी प्रति कोड़े पर मुद्दई को राज़ी कर लिया और मिस्र के गवर्नर की पीठ सौ कोड़ों की मार से बच गई।

यही वह न्याय व इंसाफ़ था जिसपर इस्लामी राज्य के ज़मीन व आसमान क़ायम थे।

यह बात मालूम रहनी चाहिए कि यह मुद्दई मुसलमान नहीं, एक ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम) था।

हक़-पसन्दी

(1)

हुकूमत और नेतृत्व एक ऐसा नशा है कि उसमें आदमी को हक़ बात सुनने की ताब नहीं रहती, लेकिन मोमिनाना ज़िन्दगी की बुनियाद सच बोलने और हक़-पसन्दी पर है। इस्लामी राज्य के ज़िम्मेदार अपनी क़ौम के अन्दर सच बोलने के जज़्बे को न सिर्फ़ ज़िन्दा रहने देते थे, बल्कि इसे और उभारते थे।

हज़रत उमर (रज़ि.) एक दिन मिंबर पर चढ़े। चारों तरफ़ सहाबा का मज्मा था। तक़रीर के दौरान यकायक आवाज़ बुलंद करके बोले—

"अगर मैं दुनिया की तरफ़ झुक जाऊँ तो तुम क्या करोगे?"

यह सुनते ही एक आदमी खड़ा हो गया। उसने म्यान से नंगी तलवार खींची और बोला—

"इस तलवार से आपका सिर उड़ा देंगे।"

"तू मेरी शान में ये शब्द कहता है।" अमीरुल मोमिनीन ने डाँटकर कहा।

"हाँ, हाँ, अमीरुल मोमिनीन! आपकी शान में!" उसने तड़ाक से जवाब दिया।

यह जवाब सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) ने फ़रमाया–

"अल-हम्दु लिल्लाह! अल्लाह का शुक्र है कि मेरी क़ौम में ऐसे लोग मौजूद हैं कि अगर मैं टेढ़ा चलूँगा तो मुझे सीधा कर देंगे।"

(2)

हज़रत अबू वाइल बिन सलमा एक मुजाहिद ताबई थे। उमवी दौर में बड़ी इज़्ज़त की निगाह से देखे जाते थे। उम्मत का मशहूर ज़ालिम हज्जाज भी उनपर मेहरबान था, मगर वे उसके कामों से परेशान थे। जब वह कूफ़ा आया तो उसने वाइल को बुला भेजा–

हज्जाज : "आपका नाम क्या है?"

अबू वाईल : आपको मालुम ही होगा वरना मुझे बुलाते कैसे?

हज्जाज : "इस शहर में कब आए?"

अबू वाईल : जब इस शहर के तमाम बाशिंदे आए।

हज्जाज : आपको कितना क़ुरआन याद है?

अबू वाईल : इतना कि अगर उसपर अमल करूँ तो मेरे लिए काफ़ी हो।

हज्जाज : मैंने आपको यहाँ इसलिए बुलाया है कि आपको कोई ओहदा देना चाहता हूँ।

अबू वाईल : कौन-सा ओहदा?

हज्जाज : क़ैद करने का।

अबु वाईल : यह तो ओहदा उन लोगों के लिए मुनासिब है जो ज़िम्मेदारी के साथ उसको पूरा कर सकें और मैं इसके लिए बिल्कुल ही मुनासिब नहीं।

हज्जाज : नहीं, तुम्हें यह ओहदा क़बूल करना पड़ेगा।

अबू वाईल : अगर मुझे इससे माफ़ रखो तो बेहतर है। अगर ज़िद करोगे तो इसे क़बूल कर लूँगा, मगर अपने दिल की बात बता देना चाहता हूँ।

हज्जाज : कहिए।

अबू वाईल : मेरी हालत यह है कि मैं तुम्हारा कोई ओहदेदार नहीं, मगर जब तुम्हारा तसव्वुर आता है तो रातों की नींद उड़ जाती है। जब ओहदेदार होऊँगा तो क्या हाल होगा?

हज्जाज : क्या मतलब?

अबू वाईल : लोग तुमसे इतने डरे हुए हैं कि इससे पहले किसी अमीर से इतना न डरे होंगे।

हज्जाज : (हँसकर) इसकी वजह यह है कि ख़ून-ख़राबा करने में कोई आदमी मुझसे ज़्यादा निडर नहीं। मैं ऐसे अहम काम कर गुज़रा हूँ कि उनके बारे में ख़याल करते हुए भी लोग डरते थे। इसी सख़्ती की वजह से मेरी मुश्किलें आसान हो गईं। ख़ैर! ख़ुदा तुमपर रहम करे। अब तुम जाओ। अगर कोई मुनासिब आदमी न मिला तो तुम्हें ज़हमत दूँगा।

अबू वाइल उठकर चले आए और फिर कभी हज्जाज के पास न गए।

अबू वाइल को जिहाद का बहुत शौक़ था। दुनिया से कोई ताल्लुक़ न था। रहने के लिए मामूली छप्पर का एक झोंपड़ा था जिसमें वह और उनके जिहाद का साथी, घोड़ा रहता था। जब जिहाद को जाते तो छप्पर उखाड़ देते, वापस आते तो फिर बना लेते।

(3)

यज़ीद बिन अबी हबीब, जो मिस्र में हदीस के एक मशहूर हाफ़िज़ थे, एक बार बीमार पड़े। हाल-चाल मालूम करने के लिए मिस्र का अमीर हौसरा बिन सुहैल ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहने लगा–

"हज़रत ! एक मसूअला तो बताइए। जिस कपड़े में मच्छर का ख़ून लगा हो उसमें नमाज़ अदा होती है या नहीं?

हज़रत यज़ीद बिन अबी हबीब ने यह सुनकर मुँह फेर लिया और बातचीत करनी बन्द कर दी।

उनकी नागवारी को देखकर हौसरा उठ गया। उसको उठते देखकर यज़ीद ने फ़रमाया–

"हर दिन ख़ल्के ख़ुदा का ख़ून करते हो और मुझसे मच्छर के ख़ून का मसूअला पूछते हो?"

हक़ बात कहना

(1)

हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि.) ने ज़ुरार असदी से कहा–

"मुझसे अली (रज़ि.) की ख़ूबियों का ज़िक्र करो।"

"अमीरुल मोमिनीन! मुझे इससे माफ़ फ़रमाइए। यह मसूअला बहुत नाज़ुक है। आपके और उनके बीच लड़ाई रह चुकी है। शायद आप मेरे बयान की ताब न ला सकें।" ज़ुरार असदी ने जवाब दिया।

"नहीं, इसका ख़याल न करो। वह वक़्त गुज़र चुका।" अमीर मुआविया (रज़ि.) ने इत्मीनान दिलाते हुए फ़रमाया।

इसपर ज़ुरार असदी ने कहना शुरू किया–

"अगर आपकी ज़िद है तो सुनिए। वे ऊँचे हौसलेवाले और बहुत मज़बूत इरादे के आदमी थे, दो टूक बात कहते थे, इंसाफ़ के साथ फ़ैसला करते थे, सरापा इल्म थे, उनकी हर बात से इल्म का स्रोत फूटता था। उनके हर काम में हिकमत झलकती थी। दुनिया और उसके लुभावनेपन से घबराते और रात की तनहाई से चाव रखते थे । ख़ुदा के डर से बड़े रोनेवाले थे, बहुत ज़्यादा ग़ौर व फ़िक्र करनेवाले थे, मामूली कपड़ा और मोटा-झोटा खाना

पसन्द करते थे। इस मामले में बिल्कुल हमारे ही तरह रहते थे। जब हम उनसे सवाल करते तो वे जवाब देते। जब उनसे इन्तिज़ार को कहते तो हमारा इन्तिज़ार करते। वे हमसे बराबरी का सुलूक करते, मगर उनके रौब की वजह से हम उनसे बातें नहीं कर सकते थे। वे दीनदारों की इज़्ज़त करते, ग़रीबों को गले लगाते, ताक़तवर को नाहक़ में हिर्स और लालच करने का मौक़ा नहीं देते थे और कमज़ोरों को इंसाफ़ से नाउम्मीद नहीं होने देते थे।''

मैंने उनको ठीक लड़ाई के ज़माने में देखा है कि रात बीत चुकी है, सितारे डूब रहे हैं और वह अपनी दाढ़ी पकड़े हुए बेचैन और ग़मगीन हैं और कह रहे हैं, ''ऐ दुनिया! मुझको धोखा न दे, दूसरे को दे। ऐ दुनिया! तू मुझसे छेड़-छाड़ करती है, मेरी तरफ़ लपक-लपककर आती है, हालाँकि मैं तुझे तीन तलाक़ दे चुका हूँ और अब पलटना नामुम्किन है। ऐ दुनिया! तेरी उम्र कम और तेरा मक़सद हक़ीर है। आह! रास्ते का ख़र्च थोड़ा, सफ़र लम्बा और रास्ता ख़तरनाक है।''

''ख़ुदा अबुल हसन पर रहम फ़रमाए, ख़ुदा की क़सम वे ऐसे ही थे।'' अमीर मुआविया ने रोकर कहा।

(2)

हज़रत मुआविया (रज़ि.) दरबार लगाए बैठे थे।

इत्तिफ़ाक़ से हज़रत अबू मरयम उनसे मुलाक़ात करने आए, मगर उस वक़्त मुआविया (रज़ि.) किसी और ही कैफियत में थे। उनको अबू मरयम का आना नागवार हुआ।

''अबू मरयम इस वक़्त आने से हमें ख़ुशी नहीं हुई।' हज़रत मुआविया (रज़ि.) ने साफ़-साफ़ कह दिया।

अबू मरयम ने यह सुनकर कहा–

''अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया है कि अल्लाह तआला जिस आदमी को मुसलमानों का सरपरस्त बनाए, अगर वह उनकी ज़रूरतों से आँख

बंद करके परदे में बैठ जाए तो अल्लाह भी क़ियामत के दिन उसकी हाजतों के सामने परदा डाल देगा।"

हज़रत मुआविया यह सुनकर काँप उठे और उसी वक़्त हुक्म दिया कि आदमी मुक़र्रर कर दिया जाए जो लोगों की ज़रूरतों को उन तक पहुँचाए।

(3)

हज़रत सईद बिन ज़ुबैर एक मशहूर ताबई थे। जब क़ैस बिन अशअस ने हज्जाज बिन यूसुफ़ के ज़ुल्मों से अल्लाह के बन्दों को नजात दिलाने के लिए तलवार हाथ में ली तो सईद बिन ज़ुबैर ने भी उनका साथ दिया, लेकिन इब्ने अशअस हार गए और सईद बिन ज़ुबैर मक्का चले गए। मक्का के गवर्नर ख़ालिद बिन अब्दुल्लाह क़ुशैरी ने उनको गिरफ़्तार करके हज्जाज के पास भिजवा दिया। वह पहले ही उनके ख़िलाफ़ भरा बैठा था। देखते ही भड़क उठा और बोला –

हज्जाज : तुम्हारा नाम क्या है?

सईद : सईद बिन ज़ुबैर।

हज्जाज : नहीं, बल्कि शक़ी बिन क़ुसैर।

सईद : मेरी माँ तुमसे ज़्यादा मेरे नाम से वाक़िफ़ थी।

हज्जाज : तुम्हारी माँ भी शक़ी, तुम भी शक़ी।

सईद : ग़ैब की जानकारी ख़ुदा के सिवा किसको है?

हज्जाज : मैं तुम्हारी दुनिया को भड़कती हुई आग में बदल दूँगा।

सईद : अगर मुझको यह यक़ीन होता कि यह तुम्हारे इख़तियार में है तो मैं तुम्हें अपना माबूद बना लेता।

हज्जाज : मुहम्मद (सल्ल.) के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है?

सईद : इमामे हिदायत और नबी-ए-रहमत थे।

हज्जाज : और अली और उस्मान के बारे में तुम्हारी क्या राय है? वे जन्नत में हैं या जहन्नम में?

सईद : मैं उनका वकील नहीं हूँ।

हज्जाज : इनमें से तुम किसको ज़्यादा पसन्द करते हो?

सईद : जो मेरे ख़ुदा के नज़दीक ज़्यादा पसन्दीदा था।

हज्जाज : ख़ुदा के नज़दीक कौन सबसे ज़्यादा पसन्दीदा था?

सईद : इसकी जानकारी ख़ुदा ही को है, जो दिलों के भेद जानता है।

हज्जाज : अमीरुल मोमिनीन अब्दुल मलिक के बारे में तुम्हारी क्या राय है?

सईद : तुम ऐसे आदमी के बारे में मुझसे क्या पूछते हो जिसके गुनाहों में से एक गुनाह तुम्हारा वुजूद है।

हज्जाज : तुम हँसते क्यों नहीं?

सईद : वह किस तरह हँस सकता है जो मिट्टी से पैदा हुआ और मिट्टी को आग खा जाती है।

हज्जाज : फिर हम लोग मन बहलावे के कामों में क्यों हँसते हैं?

सईद : सबके दिल एक जैसे नहीं होते।

आख़िर में हज्जाज ने बिगड़कर हुक्म दिया इनकी गर्दन उड़ा दी जाए, और पूछा --

हज्जाज : बताओ, तुम किस तरह क़त्ल किया जाना पसन्द करते हो?

सईद : जिस तरह तुम आख़िरत में क़त्ल होना पसन्द करते हो।

हज्जाज : क्या तुम चाहते हो कि तुम्हें माफ़ कर दूँ?

सईद : तुम माफ़ करनेवाले कौन हो? माफ़ तो अल्लाह ही करता है।

हज्जाज : तो मैं तुमको क़त्ल ही करूँगा।

सईद : अल्लाह तआला ने मौत का जो वक़्त मुक़र्रर किया है, अगर वह आ गया तो उससे बचा नहीं जा सकता, वह आगे-पीछे नहीं हो सकता और अगर ज़िन्दा रहना मुक़द्दर है तो वह भी अल्लाह ही के इख़्तियार में है।

हज्जाज ने हुक्म दिया कि इनको क़त्ल कर दिया जाए।

जब वह उस जगह पहुँचे जहाँ क़त्ल किया जाना था तो उनके लबों पर हँसी थी।

हज्जाज को मालूम हुआ तो उसने वापस बुला लिया और पूछा, "तुम किस बात पर हँस रहे थे?"

"ख़ुदा के मुक़ाबले तुम्हारे दुस्साहस पर और तुम्हारे मामले में ख़ुदा के हुक्म पर।" सईद ने जवाब दिया

हज्जाज ने अपने सामने ही क़त्ल का चमड़ा बिछाने का हुक्म दिया।

हज़रत सईद बिन ज़ुबैर ने कलिम-ए-शहादत पढ़ा और दुआ की कि ऐ रब्बुल आलमीन! मेरे क़त्ल के बाद हज्जाज को किसी के क़त्ल पर क़ादिर न करना।

जल्लाद की तलवार हवा में लहराई और हज़रत सईद का सिर तन से जुदा था। सिर ज़मीन पर गिरा तो ज़ुबान से कलिमा 'ला इला-ह इल्लल्लाहु' निकला।

कुछ दिनों के बाद हज्जाज दिमाग़ी रोगों का शिकार हो गया और फिर उसको क़ुदरत न रही कि किसी का क़त्ल कराए। उसपर बेहोशी के दौरे पड़ते थे और बेहोशी की हालत में उसे हज़रत सईद बिन ज़ुबैर पूछते हुए नज़र आते थे –

"दुश्मने ख़ुदा! तूने मुझे किस ज़ुर्म में क़त्ल किया?"

इताअत की हदें

यज़ीद बिन अब्दुल मलिक (उमवी ख़लीफ़ा) के ज़माने में ख़ुरासान व इराक़ के गवर्नर उमर बिन हुबैरा ने बड़े-बड़े आलिमों को बुलाकर फ़त्वा लेने के तौर पर पूछा --

"यज़ीद ख़ुदा का ख़लीफ़ा है, मैं उसका गवर्नर हूँ। उसकी इताअत ख़ुदा की तरफ़ से मुझपर वाजिब है, वह हमारे पास अपने हुक्म भेजता है। मैं पूरा करता हूँ। इस हालत में आपकी क्या राय है? मुझपर अल्लाह के पास उसके अच्छे-बुरे की ज़िम्मेदारी है या नहीं?"

हज़रत हसन बसरी (रह.) मौजूद थे। उन्होंने जवाब दिया –

"इब्ने हुबैरा यज़ीद के बारे में ख़ुदा से डर और ख़ुदा के मामले में यज़ीद से न डर। ख़ुदा तुझको यज़ीद से बचा सकता है, लेकिन यज़ीद तुझको ख़ुदा से नहीं बचा सकता। वह ज़माना क़रीब है कि ख़ुदा तेरे पास ऐसा फ़रिश्ता भेजेगा जो तुझे हुकूमत से उतारकर और गवर्नरी के महल से निकालकर क़ब्र की तंगी में डाल देगा। उस वक़्त तेरे नेक कामों के सिवा कोई चीज़ तुझे न बचा सकेगी। ख़ुदा ने बादशाह और हुकूमत को अपने दीन की हिमायत और अपने बन्दों की ख़िदमत के लिए बनाया है। ख़ुदा की दी हुई हुकूमत और इक़्तिदार के ज़रिये ख़ुदा के बन्दों पर सवार न हो। ख़ुदा की नाफ़रमानी में किसी मख़लूक़ की फ़रमाँबरदारी जाइज़ नहीं।"

कलिमा-ए-हक़

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब एक बार बाज़ार में बैठे थे मुत्तलिब बिन साइब उनके साथ थे। इतने में बनी मरवान (बनू उमैया) का हरकारा उधर से गुज़रा। सईद ने पूछा –

"तुम बनी मरवान के हरकारे हो?"

"जी हाँ," हरकारे ने जवाब दिया।

"तुमने उन्हें किस हाल में छोड़ा?"

"अच्छे हाल में ऐश कर रहे हैं।" हरकारे ने जवाब दिया।

"तुम इसे अच्छा हाल कहते हो। वह इंसानों को भूखा रखते हैं और कुत्तों का पेट भरते हैं।'

हरकारा ग़ुस्से में आ गया। मुत्तलिब बिन साइब ने उसे समझा-बुझाकर रुख़्सत किया और हज़रत सईद से कहा –

"ख़ुदा आपकी मग़्फ़िरत करे। सरकारी आदमियों से इतनी खुली-खुली बातें न किया कीजिए। ऐसा न हो जान के लाले पड़ जाएँ।?"

हज़रत सईद ने जवाब दिया–

"बेवक़ूफ़ आदमी, ख़ामोश रहो। ख़ुदा की क़सम! जब तक मैं ख़ुदा के हक़ों की हिफ़ाज़त करता रहूँगा, उस वक़्त तक वह मुझे इन ज़ालिमों के क़ब्ज़े में नहीं देगा।"

हिम्मत और हौसला

हज़रत सुलैमान बिन मेहरान, जो आमश के नाम से जाने जाते हैं, अजमी नस्ल के थे। वेलम की लड़ाई में गिरफ़्तार हुए। उनके मालिक ने उनको आज़ाद कर दिया और वह कूफ़ा के इल्मी मर्कज़ में पहुँचकर इल्म हासिल करने लगे। इस्लाम की दौलत पाकर यह ग़ुलाम मुसलमानों का पेशवा और इमाम बन गया। इल्म की दौलत पाकर वह दुनिया की दौलत से बेनियाज़ हो गए। कहते हैं कि उनकी रोज़ी-रोटी का ज़रिया बहुत तंग था, मगर उनकी मज्लिस में सरदार और सुल्तान फ़क़ीर मालूम होते थे।

तौहीद के नशे में इतने डूबे रहते थे कि हक़ के मामले में किसी को ख़ातिर में न लाते थे। एक बार बनी उमैया के ख़लीफ़ा हिशाम ने उनको लिखा–

"मेरे लिए अली (रज़ि.) की बुराइयाँ और उस्मान (रज़ि.) की ख़ूबियाँ लिख दीजिए।"

जब 'बादशाह' का ख़त इस 'फ़क़ीर' के पास पहुँचा तो इस ख़त को

पढ़कर क़ासिद (दूत) के सामने ही बकरी को खिला दिया और कहा –

"यह तुम्हारे लिखे का जवाब है।"

जब क़ासिद ने जवाब देने पर ज़िद किया तो लिखा –

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अगर उस्मान (रज़ि.) की ज़ात में सारी दुनिया के इंसानों की ख़ूबियाँ जमा हों, तब भी तुम्हारी ज़ात को कोई फ़ायदा नहीं पहुँच सकता और अगर अली (रज़ि.) की ज़ात में दुनिया भर की बुराइयाँ मौजूद हों तो इससे तुमको कोई नुक़सान नहीं पहुँच सकता। तुमको तो अपने नफ़्स की ख़बर रखनी चाहिए।"

यह था एक फ़क़ीराना ज़िन्दगी जीनेवाले साफ़गो ईसान का जवाब एक बादशाहे वक़्त के नाम।

बेनियाज़ी

(1)

हुकूमत की कुर्सी पर मौजूद लागों के तोहफ़े बहुत बड़े फ़ित्ने हैं। ये क़ौमों के अख़लाक़ को घुन की तरह खा जाते हैं, हक़ की आवाज़ को दबा देते हैं और मिल्लत के हौसलों को पस्त कर देते हैं। मोमिनाना ज़िन्दगी इन तोहफ़ों के साथ मेल नहीं खाती और बुज़ुर्ग हज़रात इनसे हमेशा बचा करते थे और यहाँ तक एहतियात करते थे कि आम लोगों के लिए किसी तरह भी यह जाइज़ न रह पाए।

हज़रत ताऊस बिन केसान शुरू में ग़ुलाम थे, मगर इस्लाम ने उनको आज़ाद किया और इल्म और फ़ज़्ल ने मुसलमानों का इमाम बना दिया था। यमन के एक शहर में रहा करते थे। सरदारों और सुल्तानों का एहसान लेना किसी तरह भी पसन्द न था कि यह इंसानी ज़मीर (अन्तरात्मा) को खा जाता है।

एक बार वहब बिन मुनब्बह के साथ हज्जाज बिन यूसुफ़ के भाई मुहम्मद

बिन यूसुफ़ के यहाँ गए। उस वक़्त सर्दी ज़्यादा थी। मुहम्मद बिन युसूफ़ ने उनके ऊपर एक चादर डलवा दी, लेकिन उन्होंने कंधे हिला-हिलाकर चादर को बदन से गिरा दिया। मुहम्मद बिन यूसुफ़ जो हज्जाज का भाई था, इस हरकत पर बहुत ख़फ़ा हुआ, लेकिन उन्होंने उसके ख़फ़ा होने की क़तई परवाह न की। यहाँ से उठे तो वहब बिन मुनब्बह ने उनसे कहा –

"आपने ग़ज़ब किया। अगर आपको चादर की ज़रूरत नहीं थी तो मुहम्मद बिन यूसुफ़ के गुस्से से लोगों को बचाने के लिए उस वक़्त चादर को क़बूल कर लेना चाहिए था, चाहे बाद में बेचकर ग़रीबों में क़ीमत बाँट देते।"

हज़रत ताऊस ने जवाब दिया –

"तुम ठीक कहते हो। बात बिल्कुल मामूली थी, लेकिन तुम जानते हो, अगर मैं उस वक़्त चादर को क़बूल कर लेता तो लोग मेरे इस काम को अपने लिए जाइज़ ठहराने की नज़ीर बना लेते।"

(2)

ख़लीफ़ा सुलैमान बिन अब्दुल मलिक मदीना आया और हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ मदीना के गवर्नर के साथ मस्जिदे नबवी में ज़ुह्र की नमाज़ पढ़ने गया। नमाज़ पढ़कर क़सूरा का दरवाज़ा खोला तो उसमें हज़रत सफ़वान बिन सुलैम ज़ुबैरी नज़र आए, जो एक मशहूर ताबई थे।

सुलैमान ने उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) से पूछा –

"यह कौन बुज़ुर्ग हैं, मैंने इनके चेहरे पर अच्छे आसार नहीं देखे?"

"अमीरुल मोमिनीन! यह सफ़वान बिन सुलैम हैं।" उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ि.) ने बताया।

"पाँच सौ दीनार की एक थैली इनकी ख़िदमत में ले जाकर पेश करो।" अमीरुल मोमिनीन ने अपने ग़ुलाम को हुक्म दिया।

ग़ुलाम ने फ़ौरन आदेश का पालन किया और हज़रत सफ़वान के क़रीब जाकर कहा –

"यह थैली अमीरुल मोमिनीन की ओर से आप को भेंट है। वे यहाँ मस्जिद में मौजूद हैं!"

"मियाँ! तुम्हें धोखा हुआ है, किसी और के पास भेजी होगी। हज़रत सफ़वान ने ग़ुलाम से कहा।

"क्या आप सफ़वान नहीं हैं?" ग़ुलाम ने उनको यक़ीन दिलाने के लिए पूछा।

"हूँ तो मैं ही सफ़वान, मगर तुम जाकर दोबारा पूछ आओ।" हज़रत सफ़वान ने कहा।

ज़्यों ही ग़ुलाम मुड़ा, सफ़वान जूता उठाकर मज्जिद से निकल गए और फिर जितनी देर सुलैमान मस्जिद में रहा, वह मस्जिद से ग़ायब रहे। ग़ुलाम उनको खोजने के बाद मायूस होकर चला गया।

(3)

बादशाहों और सरदारों से बेनियाज़ी मोमिनाना ज़िन्दगी की रूह है। जो अल्लाह का हो जाता है, फिर न कोई ताक़त उसे दबा सकती है और न कोई लालच उसे बहका सकता है।

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब ने कई उमवी ख़लीफ़ाओं का ज़माना पाया, मगर उनके सामने नियाज़मंदी दिखाना तो दूर की बात, उन्हें इस क़ाबिल ही न समझा कि उनके बारे में कुछ सोचा जाए।

ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक एक बार मदीना आया और उसने हज़रत सईद बिन मुसय्यिब से मिलना चाहा। वह मस्जिद नबवी में इबादत में लगे हुए थे। अब्दुल मलिक ने दरवाज़े पर खड़े होकर आदमी को भेजा कि बुला लाए।

उसने आकर कहा– "अमीरुल मोमिनीन आपसे मिलना चाहते हैं।"

"अमीरुल मोमिनीन को न मुझसे कोई ज़रूरत और न मुझे उनसे। अगर उनकी कोई ज़रूरत हो भी तो वह पूरी नहीं हो सकती।" सईद ने कहा।

अब्दुल मलिक ने यह जवाब सुनकर दोबारा आदमी भेजा और उन्होंने उसको फिर वही जवाब दिया। उसने कहा –

"तुम अजीब आदमी हो कि अमीरुल मोमिनीन बार-बार बुलावा भेजते हैं और तुम इस तरह का रूखा-फीका जवाब देते हो। अगर अमीरुल मोमिनीन ने मना न कर दिया होता तो मैं सिर काटकर ले जाता।"

हज़रत सईद ने बेपरवाई से जवाब दिया –

"अगर अमीरुल मोमिनीन मुझे कोई तोहफ़ा देना चाहते हैं तो वह मैं तुम्हें देता हूँ, जाकर हासिल कर लो और अगर कुछ और इरादा है तो ख़ुदा की क़सम! मैं अपनी जगह से उस वक़्त तक न हटूँगा जब तक जो वह करना चाहते हैं, न कर गुज़रें।"

अब्दुल मलिक यह जवाब सुनकर चला गया।

(4)

उमवी ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक का राज्य सिन्ध से मोरक्को के तट तक फैला हुआ था। अपने दौर का बड़ा ताक़तवर बादशाह था। मगर सईद बिन मुसय्यिब के बारे में सुन चुका था कि वह उसे ख़ातिर में न लाते थे।

एक बार ख़लीफ़ा मदीना आया हुआ था। किसी वजह से उसे एक रात नींद न आई, उसने दरबान को हुक्म दिया कि मस्जिद में जाकर देखो, अगर मदीने का कोई क़िस्सा कहनेवाला मिल जाए तो ले आओ कि ज़रा जी बहले।

दरबान मस्जिदे नबवी में आया। ऐसे नावक़्त यहाँ कौन मिलता? हज़रत सईद बिन मुसय्यिब अल्लाह की याद में लगे हुए थे। उसने इशारे से अपनी तरफ़ मुतवज्जेह किया। हज़रत सईद ने पूछा –

"अपनी ज़रूरत बयान करो, तुम क्या चाहते हो?"

"अमीरुल मोमिनीन की आँख खुल गई है और मुझे हुक्म दिया है कि किसी क़िस्सा कहनेवाले को ले आऊँ, इसलिए मेरे साथ चलो।" उसने बड़ी

सादगी से कहा।

"मुझे बुलवाया है क्या?" हज़रत सईद ने पूछा।

"नहीं, बल्कि यह फ़रमाया है कि जाकर देखो, अगर मदीने का कोई क़िस्सा कहनेवाला हो तो ले आओ। मैंने तुम्हें देखा कि तुम जाग रहे हो इसलिए तुम्हें ले चलता हूँ।" दरबान ने बताया।

हज़रत सईद ने झुंझलाकर कहा–

"अमीरुल मोमिनीन से जाकर कह दो कि मैं उनका कोई क़िस्सा कहनेवाला नहीं हूँ।"

दरबान ने अब्दुल मलिक को जाकर बताया कि एक आदमी मस्जिद में मिला था, मगर वह कोई दीवाना-सा था।

अब्दुल मलिक ने कहा कि वह सईद बिन मुसय्यिब हैं। उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो।

हक़ पर जमे रहना

(1)

बनू उमैया के ख़लीफ़ा का क़ायदा था कि वे अपनी ज़िन्दगी ही में दो-दो वली अहद बना देते थे और मुसलमानों से उनकी बैअत लेते थे।

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब की राय थी कि ख़लीफ़ा की ज़िन्दगी में किसी और की बैअत सही नहीं। हिशाम बिन इस्माईल, गवर्नर मदीना ने मदीनावालों से बैअत लेने के बाद हज़रत सईद बिन मुसय्यिब को बुलाया।

सईद : मुझे बुलाने की ग़रज़ क्या है?'

हिशाम : मैं आपसे वलीद और सुलैमान की बैअत लेना चाहता हूँ, जिनको अमीरुल मोमिनीन ने अपना वली-अहद मुक़र्रर किया है।

सईद : मगर अमीरुल मोमिनीन अब्दुल मलिक की मौजूदगी में किसी

दूसरे की बैअत का क्या मतलब?

हिशाम : आपको बैअत करनी होगी।

सईद : जिस बात को मैं ठीक नहीं समझता, उसपर अमल किस तरह कर सकता हूँ।

हिशाम ने यह सुनकर उनको कोड़ों से पिटावाया और फिर हुक्म दिया कि इनको तमाशा बनाते हुए रासुल सीना ले जाया जाए, जहाँ मुजरिमों को सूली दी जाती थी।

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब सूली पर चढ़ने के लिए तैयार हो गए और सूली के वक़्त सतर (गुप्तांग) खुल जाने के ख़याल से जाँघिया पहन लिया।

हिशाम ने उनके अडिग जमाव को देखा तो वापस लाकर क़ैद करने का हुक्म दे दिया। जब उनको सिपाही वापस ले चला तो उन्होंने पूछा–

"अब वापस कहाँ लिए जाते हो?"

सिपाहियों ने कहा : "क़ैद ख़ाने"

अब्दुल मलिक को मालूम हुआ तो उसने हिशाम को मलामत का ख़त लिखवाया और हुक्म दिया कि सईद बिन मुसय्यिब से छेड़-छाड़ न करो। वह उन लोगों में नहीं हैं कि जिनसे किसी फ़ित्ने का और इस्लाम और मुसलमानों के साथ किसी बुराई का ख़तरा हो।

हिशाम शर्मिंदा हुआ और उनको रिहा कर दिया।

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब ने अब्दुल मलिक का माज़रतनामा पढ़ा तो कहा–

"बहरहाल जिसने मुझपर ज़ुल्म किया है, उसके और मेरे बीच ख़ुदा है, वह ख़ूब जानता है।"

(2)

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब वलीद बिन अब्दुल मलिक के ज़माने में बीमार पड़े और सन् 14 हिजरी में इन्तिक़ाल हुआ। जब आख़री वक़्त में बेहोशी हुई तो नाफ़ेअ् बिन ज़ुबैर ने उनका बिस्तर क़िब्ला रुख़ कर दिया। होश में आए तो फ़रमाया–

"इससे क्या फ़ायदा? अगर मैं मुसलमान हूँ तो चाहे जिस रुख़ (दिशा) में मरूँ, मेरा रुख़ क़िब्ला ही की तरफ़ होगा और अगर मुसलमान नहीं हूँ और दिल क़िब्ले की तरफ़ नहीं है, तो फिर रुख़ क़िब्ले की तरफ़ फेरने का कोई फ़ायदा नहीं। अल्लाह का शुक्र है, मैं मुसलमान हूँ, जिस तरफ़ भी रुख़ हो, क़िब्ले ही की तरफ़ होगा।"

बादशाहों से बचकर

इमाम जाफ़र सादिक़ (रज़ि.) फ़रमाया करते थे–

"फ़ुक़हा (दीन के उलमा) नबियों और रसूलों के अमीन हैं, जब तक कि वे बादशाहों और सरदारों के आस्तानों पर न जाएँ। जब वे भी आस्तानों पर जाने लगें तो वे नबियों और रसूलों की अमानत का हक़ अदा करने के क़ाबिल नहीं रहते।"

साथ ही फ़रमाते, "जब तुम्हारे पास वक़्त की हुकूमत या किसी और हाकिम का कोई हुक्म पहुँचे, तो 'लाहौ-ल व ला क़ू-व-त इल्ला बिल्लाहि' ज़्यादा पढ़ो, यह कुशादगी की कुंजी है।"

अल्लाह की मदद

बनी अब्बास के ताक़तवर ख़लीफ़ा मामून रशीद ने बग़दाद के गवर्नर को हुक्म दिया कि फ़ुक़हा और मुहद्दिसों को जमा करके उनके सामने यह सवाल करो कि वे क़ुरआन को मख़लूक़ मानते हैं या ग़ैर-मख़लूक़। जो मख़लूक़ मान लें उनको छोड़ दो और जो न माने उनके पैरों में बेड़ियाँ डालकर मेरे पास भेज दो, ताकि मैं उनकी गर्दन मार दूँ।

इसहाक़ बिन इबराहीम बग़दाद के गवर्नर ने इस फ़रमाने-शाही पर अमल किया और बग़दाद के फ़ुक़हा और मुहद्दिसों को अपने सामने जमा किया। चार के सिवा सबने सरकारी अक़ीदे को मान लिया। चारों के पाँवों में बेड़ियाँ डाल दी गईं और क़ैद कर दिया गया। सुबह हुई तो इनमें से एक और टूट गया। दूसरे दिन एक और शाही धमकियों की ताब न ला सका और उसने हुकूमत के जब्र के सामने सिर झुका दिया। सिर्फ़ इब्ने नूह और अहमद बिन हंबल बाक़ी रह गए। उनके पैरों में बेड़ियाँ डालकर तर्सूस रवाना कर दिया गया। राह में इब्ने नूह ने इंतिक़ाल किया और सिर्फ़ अहमद बिन हंबल तर्सूस पहुँचे, मगर ख़ुदा की क़ुदरत कि उनके पहुँचने से पहले मामून ही अपनी मौत मारा गया।

सच बोलना

हिशाम बिन अब्दुल मलिक वलीअहदी के ज़माने में शाम के बड़े लोगों के साथ हज को गया। बैतुल्लाह का तवाफ़ करने के बाद हजरे अस्वद को बोसा देने के लिए आगे बढ़ा तो भीड़ इतनी थी कि इंतिहाई कोशिश के बावजूद न पहुँच सका और मजबूर होकर रुक गया और भीड़ के कम होने का इंतिज़ार करने के लिए कुछ दूरी पर कुर्सी बिछाकर बैठ गया।

इतने में इमाम ज़ैनुल आबिदीन आए और तवाफ़ के बाद हजरे अस्वद को बोसा देने के लिए आगे बढ़े। भीड़ ने उनको देखा तो इस तरह छंट गई कि गोया बादल था जो सूरज की किरनों से छंट गया। हज़रत इमाम जैनुल आबिदीन इत्मीनान से आगे बढ़े और हजरे अस्वद को बोसा दिया।

इस हैरत-अंगेज़ मंज़र को देखकर एक शामी सरदार ने हिशाम से पूछा– "वह कौन आदमी है जो दिलों पर यूँ हुकूमत कर रहा है!"

हिशाम ने अनजान बनकर कहा– "मैं नहीं जानता।"

फ़र्ज़ूक़ शायर इत्तिफ़ाक़ से वहाँ मौजूद था। उसने हिशाम की यह हरकत देखी तो पुकार उठा– "मैं उनको जानता हूँ।"

"यह कौन है?" शामी ने पूछा।

फ़र्ज़ूक़ ने वहीं उसी वक़्त एक क़सीदा इमाम ज़ैनुल आबिदीन की शान में लिखा–

यह वह आदमी है जिसको बतहा की ज़मीन जानती है।

बैतुल्लाह जानता है और हरम जानता है और सारी दुनिया जानती है।

यह उसका बेटा है जो तमाम लोगो में बेहतर था।

यह परहेज़गार, पाकबाज़, नेक और बुज़ुर्ग है।

जब क़ुरैश इसको देखते हैं तो कहते हैं, ''यह वह है जिसकी शराफ़त पर शाराफ़त की बात ख़त्म हो गई।''

तेरा यह कहना कि ''मैं इसे नहीं जानता, उसको कुछ नुक़सान नहीं पहुँचा सकता। अगर तू नहीं जानता तो अरब और अज़म तो ख़ूब जानता है।''

यह ऐसा सख़ी है कि कलिम-ए-शहादत के सिवा इसने लफ़्ज़ 'ला' (यानी नहीं) कभी नहीं कहा। अगर तशहहुद न होता तो वह 'ला' के बजाय भी नअम (हाँ) ही कहता।

जब वह रुक्ने-हतीम की तरफ़ बोसा देने आता है तो ऐसा मालूम होता कि ख़ुद हतीम बढ़कर उससे मिल जाएगा।

यह उस ख़ानदान में से है जिनका ज़िक्र हर मामले में अल्लाह के बाद होता है और बात उन्हीं की तारीफ़ पर आकर ख़त्म हो जाती है।

इसके लिहाज़ और हैबत की वजह से कोई इसके सामने बात नहीं करता अगर करता है तो उस वक़्त, जब वह मुस्कुराता है।

यह फ़ातिमा का पोता है। अगर तू नहीं जानता तो सुन कि उसके नाना पर अल्लाह के नबियों का सिलसिला बन्द हो गया।

बनू उमैया को हज़रत अली और हज़रत हुसैन (रज़ि.) के ख़ानदान से बैर था। उसको देखते हुए फ़र्ज़ूक़ की यह बेबाक़ी मौत से खेलने जैसी थी, मगर हमारे बुज़ुर्ग तलवार की धार पर भी हक़ बात कहने के आदी थे। फ़र्ज़ूक़ ने यह क़सीदा इस जोश से पढ़ा कि सब तरफ़ सन्नाटा छा गया। हिशाम भी ख़िसियानी हँसी हँसता रहा। उस वक़्त तो कुछ न कहा, मगर बाद में फ़र्ज़ूक़ को क़ैद कर दिया।

इमाम ज़ैनुल आबिदीन ने इनाम व इकराम के तौर पर फ़र्ज़ूक़ को 12 हज़ार दिरहम अता फ़रमाए, मगर उसने यह कहकर वापस कर दिए कि मैंने ख़ुदा और रसूल (सल्ल.) की ख़ुशी के लिए तारीफ़ की थी, इनाम के लालच में नहीं। अगर इनाम का तलबगार होता तो हिशाम की तारीफ़ करता।

इमाम ज़ैनुल आबिदीन ने तोहफ़ा फिर इस पैग़ाम के साथ वापस भिजवा दिया कि हम अहले बैत जब किसी को कुछ देते हैं तो फिर वापस नहीं लेते। अल्लाह तुम्हारी नीयत को जानता है, इसका बदला अलग से देगा।

इर्शाद की तामील में फ़र्ज़ूक़ ने तोहफ़ा ले लिया।